पाराशरस्मृतिः

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
४५

पाराशरस्मृतिः

हिन्दीटीकासहिता

व्याख्याकार
पं० श्रीगुरुप्रसादशर्मा

सम्पादक
श्रीमन्नालाल 'अभिमन्यु' एम० ए०

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बनारस स्टेट बैंक के पीछे)
पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी-२२१ ००१
दूरभाष : ३२०४०४

द्वितीय संस्करण १९९८
मूल्य : ४०.००

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के० ३७/११७, गोपालमंदिर लेन,
पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी-२२१ ००१
दूरभाष : ३३३४३१

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहर नगर,
पो० बा० नं० २११३,
दिल्ली-११० ००७
दूरभाष : २३६३९१

*

अक्षर-संयोजक
साधना प्रेस
वाराणसी

मुद्रक
रत्ना प्रिण्टिंग वर्क्स
वाराणसी

भूमिका

'अधीत्य चतुरो वेदान् साङ्गोपाङ्गपदक्रमान्।
स्मृतिहीना न शोभन्ते चन्द्रहीनेव शर्वरी'॥ —*बृहस्पति:*

भारतवर्ष धर्मप्राण भूमि है। यहाँ के प्रत्येक कार्य धर्म की रीति से हुआ करते हैं। धर्म क्या है? इस विषय में महर्षियों के विचार भिन्न-भिन्न हैं। वैशेषिकसूत्र के अनुसार धर्म की परिभाषा इस प्रकार है—

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'॥

तैत्तिरीय श्रुति का कथन है—

'धर्म आचार्यो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'।

जैमिनि के अनुसार धर्म का लक्षण इस प्रकार है—

'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'।

हमारे महर्षियों ने धर्म का स्वरूप जानने के लिए वेद को मुख्य साधन बतलाया है। यथा—

'धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।
द्वितीयं धर्मशास्त्राणि तृतीयं लोकसङ्ग्रहः'॥

— *महाभारत-आश्वमेधिकपर्व*

'वेदो धर्ममूलं तद्विदां च स्मृतिशीले'। — *गौतमधर्मसूत्र*

'धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च'। — *आपस्तम्बधर्मसूत्र*

जब यह कहा जाता है कि धर्म का प्रथम साधन वेद है तो इसका यह तात्पर्य नहीं है कि स्मृति-ग्रन्थों की तरह उसमें नियम-वाक्य हैं। वेद में उस प्रकार के मन्त्र हैं जिन्हें मीमांसा के शब्दों में 'अर्थवाद' कहते हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने वेद को सर्वोच्च आसन प्रदान किया है वह उपयुक्त ही है; क्योंकि यदि वैदिक मन्त्रों का संग्रह किया जाय तो वे विवाह, पुत्र (दत्तक आदि), दाय विभाग, स्त्री-धन आदि का अच्छा वर्णन करते हैं। उदाहरण

स्वरूप मुनि वशिष्ठ के अनुसार वेद में कहा गया है कि भ्रातृविहीना स्त्री अपने वंश के लोगों को प्राप्त होती है और उनकी पुत्रिका होती है; यथा—

'विज्ञायते अभ्रातृका पुंसः पितृनभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम्।'

— *वशिष्ठधर्मसूत्र (१७ / १६)*

वशिष्ठ का उक्त वाक्य ऋग्वेद के इस मन्त्र के आधार पर है—

'अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः'॥

— (ऋ० २।१।८; निरुक्त ३।५)

अर्थात्— 'जिस प्रकार भ्रातृविरहिता स्त्री अपने परिवार को और पतिविहीना अपने पति के धन के लिए गर्ता (असेम्बली) को प्राप्त होती है, अथवा उस स्त्री के समान जो खूब अच्छी तरह सज-धजकर अपने पति के मिलन की लालसा से जाती है उसी प्रकार एक मन्दस्मिता बालिका की भाँति उषा अपने सौन्दर्य को प्रस्फुटित करती हुई अपने पति के पास जाती है'।

यहाँ उपमा की विचित्रता देखते ही बनती है! अधिक जानने के लिए, ऋ० (३।५।१)और अथर्ववेद (१।४।१७) देखिए। ऐसी भ्रातृहीना कन्याओं का विवाह जल्दी नहीं होता था। यहाँ तक कि पितृगृह में वे वृद्धा भी हो जाती थीं। इसके विषय में ऋग्वेद का मन्त्र 'अमाजूरिव पित्रोः' (२।६।२०) स्पष्ट ही उल्लेख करता है।

वेद के अनन्तर दूसरा स्थान धर्मशास्त्र को प्राप्त है। पहले श्रौतसूत्र का आविर्भाव हुआ; क्योंकि वे वैदिक यज्ञों से अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्ध रखते हैं। वे यज्ञ की प्रत्येक बात का विशद वर्णन करते हैं। तदनन्तर गृह्यसूत्र का जन्म हुआ। उसके बाद धर्मसूत्र का समय आता है। सर्वप्रथम वे परिशिष्ट ग्रन्थ की भाँति थे। किन्तु बाद में उनको स्वतन्त्र रूप प्राप्त हुआ। बहुत समय तक वे नियम स्मृति (मस्तिष्क) में थे अतः उनका नाम 'स्मृति' पड़ा।

गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र में भिन्नता यह है कि गृह्यसूत्र गृहस्थ के गृहकर्तव्यों (नित्य यज्ञ आदि) का वर्णन करते हैं और धर्मसूत्र प्रत्येक व्यक्ति के

सामाजिक जीवन (वर्णाश्रमधर्म, व्यवहार आदि) का पूर्णतया उल्लेख करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ संस्कारों का उल्लेख दोनों में पाया जाता है; किन्तु धर्मसूत्र केवल संस्कारों (गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म आदि) का वर्णन करते हैं और गृह्यसूत्र इन संस्कारों का विशद वर्णन करते हुए जिन-जिन अवसरों पर जो-जो मन्त्र पढ़ने चाहिये उनको बतलाते हैं।

धर्मसूत्रों में आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम, वशिष्ठ आदि प्रमुख हैं। इनके विषय में आगे यथास्थान वर्णन करेंगे। यहाँ स्मृतियों के विषय में विचार कर लेना उचित होगा। धर्मसूत्र गद्य में हैं और कुछ गद्य-पद्य मिश्रित हैं; किन्तु स्मृतियाँ पद्य में हैं। स्मृतियाँ बहुत ही व्यवस्थित वर्णन करती हैं। उन्होंने आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त आदि शीर्षक भी दे दिए हैं, किन्तु ऐसा वर्णन धर्मसूत्रों में नहीं मिलता।

स्मृतियों की संख्या में भी विभिन्नता है—

'तेषां मन्वङ्गिरोव्यासगौतमात्र्युशनोयमाः।
वसिष्ठ-दक्ष-संवर्त-शातातप-पराशराः ॥
विष्ण्वापस्तम्बहारीताः शङ्खः कात्यायनो गुरुः।
प्रचेता नारदो योगी बौधायन-पितामहौ ॥
सुमन्तु-काश्यपौ बभ्रुः पैठीनो व्याघ्र एव च।
सत्यव्रतो भरद्वाजो गार्ग्यः कार्ष्णाजिनिस्तथा ॥
जाबालिर्जमदग्निश्च लौगाक्षिर्ब्रह्मसम्भवः।
इति धर्मप्रणेतारः षट्त्रिंशदृषयः स्मृताः' ॥

— *(संस्कारमयूख और स्मृतिचन्द्रिका)*

वृद्धगौतमस्मृति के अनुसार—मनु, बृहस्पति, दक्ष, गौतम, यम, अङ्गिरस, योगीश्वर, प्रचेतस्, शातातप, पराशर, संवर्त, उशनस्, शङ्ख, लिखित, अत्रि, विष्णु, आपस्तम्ब और हारीत स्मृतिकर्ता हैं।

उपस्मृतियाँ—

'नारदः पुलहो गार्ग्यः पुलस्त्यः शौनकः क्रतुः।
बौधायनो जातुकर्णो विश्वामित्रः पितामहः।

जाबालिर्नाचिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षि-कश्यपौ ॥
व्यासः सनत्कुमारश्च शन्तनुर्जनकस्तथा ।
व्याघ्रः कात्यायनश्चैव जातूकर्ण्यः कपिञ्जलः ॥
बोधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तथैव च ।
पैठीनसिः गोभिलश्चेत्युपस्मृतिविधायकाः' ॥

२१ स्मृतिकार—

'वसिष्ठो नारदश्चैव सुमन्तुश्च पितामहः ।
विष्णुः कार्ष्णाजिनिः सत्यव्रतो गार्ग्यश्च देवलः ॥
जमदग्निर्भरद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
आत्रेयश्च गवेयश्च मरीचिर्वत्स एव च ॥
पारस्करश्चर्ष्यशृंगो वैजवापस्तथैव च ।
इत्येते स्मृतिकर्तार एकविंशतिरीरिताः' ॥

— *(वीरमित्रोदय, परिभाषाप्रकरण, पृष्ठ १८)*

पराशर मुनि निम्नलिखित स्मृति-ग्रन्थकारों के नामों का उल्लेख करते हैं—(१) मनु, (२) वसिष्ठ, (३) कश्यप, (४) गर्ग, (५) गौतम, (६) उशना, (७) अत्रि, (८) विष्णु, (९) संवर्त, (१०) दक्ष, (११) अंगिरा, (१२) शातातप, (१३) हारीत, (१४) याज्ञवल्क्य, (१५) आपस्तम्ब, (१६) शंख-लिखित, (१७) कात्यायन एवं (१८) प्राचेतस।

इन स्मृतिशास्त्रों का कुछ थोड़ा-सा वर्णन कर देना आवश्यक है। केवल सङ्केत मात्र से ही आप लोगों को सब बातें मालूम हो जायगी और वर्तमान पुस्तक से सम्बन्ध रखने के कारण वे असामयिक भी न होंगी।

(१) मनुस्मृति

मनुस्मृति की शैली अत्यन्त सरल एवं धारावाहिक है। अधिकतया श्लोक पाणिनि के नियमों के अनुसार हैं। मनुस्मृति की प्रामाणिकता बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही है। यथा—

(क) वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धाकाण्ड अ० १८। ३०-३२ की तुलना मनुस्मृति अ० ८। ३१८, ३१६ से कीजिए।

(ख) वज्रसूची-उपनिषद् (वेबर सम्पादित संस्करण) में स्थान-स्थान पर मनु का उल्लेख किया गया है। यथा—

उक्तं हि मानवे धर्मे—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन वा।
त्र्यहाच्छूद्रश्च भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्'॥ (मनु० १०।९२)

उक्तं हि मानवे धर्मे—

'वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तथैव च प्रसूतस्य निष्कृतिर्नोपलभ्यते'॥ (मनु० ३।१९)

उक्तं हि मानवे धर्मे—

'अधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गोपाङ्गेन तत्त्वतः।
शूद्रात्प्रतिग्रहग्राही ब्राह्मणो जायते खरः॥
खरो द्वादशजन्मानि षष्टिजन्मानि शूकरः।
श्वानः सप्ततिजन्मानि समासान्मनुरब्रवीत्'॥

सम्प्रति उपलब्ध मनुस्मृति में यह श्लोक नहीं मिलता; किन्तु इस आशय का पराशरस्मृति में श्लोक मिलता है—

'गृध्रो द्वादशजन्मानि दशजन्मानि शूकरः।
श्वयोनौ सप्तजन्मानि समासान्मनुरब्रवीत्'॥

उक्तं हि मानवे धर्मे—

'अरणीगर्भसम्भूतः कठो नाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम्'॥

(यह पद्य भी नहीं मिलता)

(ग) मनु के धर्मशास्त्र के विषय में अंगिरस वर्णन करता है (देखिए स्मृतिचन्द्रिका १, पृष्ठ ७)।

(घ) बृहस्पति कहते हैं—

'वेदार्थोपनिबद्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।
मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते'॥

इसे अपरार्क ने याज्ञ० २। २१ में कहा है; और कुल्लूकभट्ट ने मनु० १। १ पर इसे लिखकर एक श्लोक और लिखा है—

'तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च।
धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्यावन्न दृश्यते'॥

(ङ) अपरार्क और कुल्लूकभट्ट बतलाते हैं कि भविष्यपुराण में मनुस्मृति के श्लोकों की व्याख्या मिलती है (देखिये मनु० ११। ७२। ७३ एवं १०० पर कुल्लूकभट्ट; अपरार्क पृष्ठ १०७१, १०७६)

(च) जैमिनीयसूत्र के भाष्यकार शबर स्वामी लिखते हैं कि 'उपदिष्टवन्तः मन्वादयः' (पूर्वमीमांसा १। १। २)। फिर उन्होंने एक श्लोक लिखा है जो मनु० ८। ४१६ है और उद्योगपर्व ३३। ६४ के समान है।

(छ) बलभीराज धरसेन का एक शिलालेख (बलभी सं. २५२-५७१ ई०) वर्णन करता है—

'मन्वादिप्रणीतविधिविधानकर्मा' (Indian Antiquary, Vol. VIII, P. 303, Gupta Inscriptions P. 165)

(ज) बदामी के चालुक्यों की ७वीं सदी के शिलालेख में मनु के श्लोक मिलते हैं जो आजकल की मनुस्मृति में नहीं हैं—

मनुगीतं श्लोकमुदाहरन्ति—

'बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः।
यस्य-यस्य यदा भूमिः तस्य-तस्य तदा फलम्॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरति वसुन्धराम्।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते'॥

(झ) मृच्छकटिक वर्णन करता है—

'अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह'॥

— *(मनु ८। ३८० से तुलना कीजिए)*

(ञ) कुमारिलभट्ट का तन्त्रवार्तिक स्मृतियों में प्रधान स्थान मनुस्मृति को देता है।

(ट) श्री शंकराचार्य अपने वेदान्त भाष्य और बृहदारण्यक उपनिषद् में अधिकतया मनु के श्लोक लिखते हैं।

(ठ) याज्ञवल्क्य के टीकाकार विश्वरूप अपनी टीका में मनु के लगभग दो सौ श्लोक लिखते हैं।

(ड) कम्बोडिया में भी मनुस्मृति की प्रधानता थी। ए० बरगायन के Inscriptions Sanscrites de Campa et du Cambodge के पृष्ठ २४३ में लिखा है—

'आचार्यवद्गृहस्थोऽपि माननीयो बहुश्रुतः।
अभ्यागतगुणानां च परा विद्येति मानवम्'॥

— *(यह पद्य मनु० ३। ७७-८० का आशयानुवाद है)*

'वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्'॥ (मनु० २। १३६)

(२) वसिष्ठधर्मसूत्र

वसिष्ठ धर्मसूत्र की शैली गौतम की भाँति है। बहुत से सूत्र उन्हीं के अथवा कुछ परिवर्तन के साथ दिये गये हैं। मुनि वसिष्ठ स्थल-स्थल पर गौतम का उल्लेख करते हैं। यथा—

'ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रमशौचं सद्यः शौचमिति गौतमः'। (४। ३४)

'आहिताग्निश्चेत् प्रवसन् म्रियते, पुनः संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः। (४, ३६)

वसिष्ठ का उल्लेख करते हुये मनु० कहते हैं कि वसिष्ठ मूलधन का १/८ भाग प्रतिमास में सूद की दर लिखते हैं ('वसिष्ठविहितां वृद्धिं' मनु० ८। १४०)। वसिष्ठजी कहते हैं कि 'न म्लेच्छभाषां शिक्षेत' (६। ४१)। केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, प्रथमखण्ड, पृष्ठ २४९ में मिस्टर हाप्किन्स लिखते हैं कि वसिष्ठ १८, ४ 'वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रामको भवतीत्याहुः' सम्भवतः रोमन लोगों का उल्लेख करता है। कुमारिलभट्ट (तन्त्रवार्तिक पृष्ठ-१७९) लिखते हैं कि वसिष्ठधर्मसूत्र ऋग्वेदियों द्वारा पढ़ा जाता है।

(३) कश्यपस्मृति

कश्यप मुनि का उल्लेख पराशर ने प्रथम अध्याय में किया है (काश्यपास्तथा)। धर्मशास्त्रकारों में महर्षि याज्ञवल्क्य ने इनका उल्लेख नहीं किया है। स्मृतिचन्द्रिका तथा सरस्वतीविलास १८ उपस्मृतियों का वर्णन करते हैं उनमें कश्यप भी सम्मिलित है। बौधायनधर्मसूत्र (१। ११। २०) कहता है कि कश्यप का कथन है कि जो स्त्री धन द्वारा खरीदी गयी हो उसे 'पत्नी' नहीं कहते, वह तो दासी है।

'क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते।
सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां कश्यपोऽब्रवीत्'॥

(४) गर्गस्मृति

उपस्मृतियों में इस स्मृति का भी नाम आता है। महर्षि पराशर ने भी प्रथम अध्याय में 'गार्गीया' का उल्लेख किया है। विश्वरूप ने एक श्लोक लिखा है जिसमें गर्ग मुनि 'धर्मवक्ता' कहे गये हैं।

ज्योतिष की पुस्तक 'गार्गी संहिता' का कुछ अंश उपलब्ध हुआ है, जिससे ऐतिहासिकों को बहुत लाभ हुआ है। इस पुस्तक में एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन है कि—

'ततः साकेतमाक्रम्य पञ्चालान्मथुरांस्तथा।
यवना दुष्टविक्रान्ता प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्'॥

(देखिये मिस्टर कर्न की बृहत्संहिता की भूमिका पृष्ठ ३३-४० और कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ५४४ लाइन २१-२६)।

(५) गौतमधर्मसूत्र

प्राचीन समय में विशेषतः गौतमधर्मसूत्र को सामवेदी पढ़ते थे। कुमारिल ने (तन्त्रवार्तिक पृष्ठ १७९. में) कहा है कि—

'पुराण-मानवेतिहासव्यतिरिक्त-गौतम-वसिष्ठ-शङ्ख-लिखित-हारीतापस्तम्ब-बौधायनादिप्रणीतधर्मशास्त्राणां गृह्यग्रन्थानां च प्रातिशाख्य-लक्षणवत्प्रतिचरणं पाठव्यवस्थोपलभ्यते'।

सामवेद के सामविधान ब्राह्मण का गौतम धर्मसूत्र अत्यन्त ऋणी है।

गौतम का उल्लेख बौधायन, वसिष्ठ और बृहस्पति करते हैं। गौतम पारसियों और यूनानियों (पारशव-यवन० ४। २१) का जिक्र करते हैं।

(६) उशनस स्मृति

उशना राजनीति के ज्ञाता थे ऐसा कौटिल्य अर्थशास्त्र से पता चलता है। महाभारत शान्तिपर्व (अ० ५६। २९-३०) उशना की राजनीति पर पुस्तक लिखने का उल्लेख करता है। औशनस धर्मशास्त्र (ब्रिटिश म्यूजियम की हस्तलिखित प्रति, अ० ३ folio 3 A)का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के, एक वर्ण नीचे की कन्या से उत्पन्न पुत्र अपने पिता के वर्ण के होते हैं। यथा—

'ब्राह्मणेन क्षत्रियायाँ जातो ब्राह्मण एव स:'।

(७) अत्रिधर्मसूत्र

अत्रि अत्यन्त प्राचीन थे; क्योंकि इनका उल्लेख मनुस्मृति (अ० ३। १६) में मिलता है कि 'शूद्रावेदी पतत्यत्रे:'।

दक्षिण कॉलेज संग्रहालय में बहुत सी हस्तलिखित प्रतियाँ ९ अध्याय में हैं। इसका सातवाँ अध्याय रहस्य, प्रायश्चित्त और आरम्भ का प्रथम सूत्र बहुत-सी विदेशी जातियों का उल्लेख करता है। यथा—

अथातो रहस्यानि व्याख्यास्याम:। नटनर्तकगायनगान्धर्विकश्वपाक-कारुक-वीशोत्कटवीणाशास्त्र-शक-यवन-काम्बोज-बाह्लीक-खश-द्रविड-वङ्ग-पारश-वील्वातदीनां (?) भुक्त्वा प्रतिगृह्य च स्त्रीगमने सहभोजने रहस्ये रहस्यातिप्रकाशे प्रकाश्यानि चरेत्।

(८) विष्णुधर्मशास्त्र

इसकी शैली वसिष्ठधर्मसूत्र की भाँति गद्य-पद्य मिश्रित है। विष्णुधर्मशास्त्र और मनुस्मृति में कम से कम १६० श्लोक समान हैं। वे एक दूसरे के गद्य-पद्य रूप मालूम पड़ते हैं। भगवद्गीता के भी श्लोक विष्णुधर्मशास्त्र में मिलते हैं। यथा—

'अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि चाप्यथ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि'॥

— *(विष्णुधर्मशास्त्र २०, ४८-४९, ५१-५३ ये गीता, २, २८, १३, २३, २४, २५ के श्लोक हैं)।*

'आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी'॥

(विष्णु.७२।२; गीता अ० २।७०)

महाराज विष्णु म्लेच्छों तथा अन्त्यजों से सम्भाषण करने के लिए निषेध करते हैं (न म्लेच्छान्त्यजान् अभिभाषेत ७१।५९), म्लेच्छदेशों की यात्रा करने के लिए मना करते हैं (न गच्छेत्म्लेच्छविषयम्, ८४, २) और शूद्रों के राज्य में भी न रहने के लिए कहते हैं (न शूद्रराज्ये निवसेत् ७१, ६४)।

(९) संवर्त्तस्मृति

महाराज संवर्त्त ब्राह्म विवाह को प्रशस्त बतलाते हैं—

'अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै।
ब्राह्मीयेण विवाहेन दद्यात्तान्तु सुपूजिताम्॥
स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विन्दति पुष्कलम्।
साधुवादं लभेत् सद्भिः कीर्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम्'॥

(१०) दक्षस्मृति

दक्षस्मृति में २०० से अधिक श्लोक हैं जिनमें लगभग ५३ हेमाद्रि

और कुल्लूकभट्ट ने उदाहरणरूप में प्रदर्शित किए हैं। सती होने के लिए वे कहते हैं—

'मृते भर्तरि या नारी समारोहेत् हुताशनम्।
सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गलोके महीयते'॥

(११) अंगिरसस्मृति

इनके श्लोक (३। ७४-८१) पराशरस्मृति (अ० ८। ३-१०) में मिलते हैं (बम्बई संस्कृत सीरीज की पराशरसंहिता, खण्ड द्वि० भा०, प्रथम, पृष्ठ २०६-२०७)। शुद्धिमयूख अंगिरा का निम्नलिखित श्लोक लिखता है—

'सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा।
दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत्'॥

अंगिरा के अन्य श्लोक भी श्रीमाधवाचार्य ने अपनी व्याख्या में दिए हैं—

'वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः।
कुर्यान्मूत्र-पुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः॥
कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम्।
विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात् यद्वा कर्णे समाहितः'॥

(१२) शातातपस्मृति

पराशर और याज्ञवल्क्य (१, ४.५) ने शातातप को धर्मशास्त्रकारों की श्रेणी में रखा है। विश्वरूप कहते हैं—

यथा शातातपः—श्राद्धमनुक्त्वैव तद्गतान्गुणानाह—
'विना यज्ञोपवीतेन गन्धैर्यस्तु समालभेत्' इति।

हेमाद्रि और विज्ञानेश्वर आदि भी इनका उल्लेख करते हैं जिससे पता चलता है कि इनका धर्मशास्त्र दान, श्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि का वर्णन करता है। पद्यवाली स्मृति में एक श्लोक है—

'सगोत्रस्त्रीप्रसंगेन जायते च भगन्दरः।
तेनापि निष्कृतिः कार्या महिषीदानयत्नतः'॥

(१३) हारीतधर्मसूत्र

यह बहुत ही प्राचीन है। बौधायन धर्मसूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र और वसिष्ठधर्मसूत्र हारीत की प्रामाणिकता स्वीकार कर उनके सूत्रों को लिखते हैं। काश्मीरी शब्द 'कफेल्ल' का उल्लेख हारीत में मिलता है। इसलिए सम्भवतः यह काश्मीर में निर्मित हुआ। हारीत का सूत्र निम्न है—

'पालङ्क्या-नालिका-पौतीक-शिग्रु-सृसुक-घार्ताक-भूस्तरण—कफेल्ल-माष-मसूर-कृतलवणानि च श्राद्धे न दद्यात्'।

इस पर हेमाद्रि महाराज का कथन है—

'कफेल्ल आरण्यविशेषः, काश्मीरेषु प्रसिद्ध इति हारीतस्मृतिभाष्यकारः'।

हारीत के ये विचार स्मरणीय हैं जो दो प्रकार की स्त्रियों के विषय में उन्होंने उल्लेख किया है। उनका कहना है कि ब्रह्मवादिनी और सद्योबधू ये दो प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं। जिनमें ब्रह्मवादिनियों को उपनयन, यज्ञ, वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त हैं। यथा—

'द्विविधाः स्त्रियो, ब्रह्मवादिन्यस्सद्योबध्वश्च।
तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं
स्वगृहे च भिक्षाचर्येति।

सद्योबधूनां चोपस्थिते विवाहे कथञ्चिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः'।

(स्मृतिचन्द्रिका और चतुर्विंशतिमतव्याख्या, बनारस के संस्करण में)

(१४) याज्ञवल्क्यस्मृति

महर्षि याज्ञवल्क्य का नाम वैदिक ऋषियों में सुप्रसिद्ध है। याज्ञवल्क्य स्मृति के श्लोकों पर विचार करने में अग्निपुराण और गरुड़पुराण बहुत ही सहायता पहुँचाते हैं। यद्यपि अग्निपुराण यह नहीं कहता है कि उसने याज्ञवल्क्य से लिया है तथापि गरुड़पुराण स्पष्टरूप से स्वीकार करता है। यथा—

'याज्ञवल्क्येन यत्पूर्वं धर्मं प्रोक्तं कथं हरे।
तन्मे कथय केशिघ्न! यथातत्त्वेन माधव॥

याज्ञवल्क्य की स्मृति मनु से अधिक व्यवस्थित रूप में है। समस्त

याज्ञवल्क्य स्मृति अनुष्टुप् छन्द में रची गयी है। यह कहा जाता है कि याज्ञवल्क्य के पास ऋषिलोग मिथिला में पहुँचे तो वहाँ वर्ण और आश्रम के धर्म उन्हें बतलाये गये।

कुषाणवंशियों ने सोने के सिक्के चलाए थे, जिनपर Goddess Nana of Nanaia देवी की मूर्त्ति थी (देखिये Coins of the Later Indo Scythians by Major General Sir A. Cunningham K.C.I.E. और The Catalogue of the Coins in the Punjab Museum by Whitehead)। इन सिक्कों 'नणकों' का उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति अ० २ में आता है।

(१५) आपस्तम्बधर्मसूत्र

आपस्तम्ब धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र एक ही ग्रन्थकार के हैं। आपस्तम्ब में अन्य धर्मसूत्रों के अतिरिक्त विचित्रता एवं विशेषता है। इनकी वर्णनात्मक शैली अत्यन्त ही क्लिष्ट एवं पाणिनि के नियमों से रहित है। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र प्राचीन समय से प्रामाणिक माना गया है। शबर (जैमिनि ६,८,१८ पर) भाष्य करते हुए आपस्तम्ब का एक सूत्र लिखते हैं और दूसरे सूत्र का व्याख्यानरूप देते हैं। आपस्तम्ब का कथन है—

धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नान्यां कुर्वीत।
अन्यतराभावे कार्या प्रागग्न्याधेयात्॥

शबर लिखते हैं–

यथैव स्मृतिः 'धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या' इति, 'धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नान्यां कुर्वीत' इति च एवमिदमपि स्मर्यत एव 'अन्यतरापाये अन्यां कुर्वीत' इति (शबरः)। यही वचन 'पारस्करगृह्य सूत्र' में भी सुलभ है।

इसी प्रकार तन्त्रवार्तिक, विश्वरूप, मेधातिथि, विज्ञानेश्वर, अपरार्क आदि इनके सूत्रों का उल्लेख करते हैं।

(१६) शङ्ख और लिखित

तन्त्रवार्तिक द्वारा पता चलता है कि शङ्खलिखित का धर्मशास्त्र शुक्लयजुर्वेद के वाजसनेयी शाखा के लोगों द्वारा पढ़ा जाता था ('शङ्खलिखितोक्तं च वाजसनेयिभिः'—तन्त्रवार्तिक पृष्ठ १७९)। महाभारत

शान्तिपर्व अ० २३ में शङ्ख और लिखित नाम के दो भाइयों का चरित्र वर्णित है। याज्ञवल्क्य (१,५) शङ्ख एवं लिखित को धर्मशास्त्रकारों में लिखते हैं। विश्वरूप ने एक प्राचीन लेखक के श्लोक को लिखा है—

'समीक्ष्य निपुणं धर्ममृषिभ्यो मनुभाषितम्।
आम्नायात् सम्युगद्धृत्य शङ्ख न लिखितस्तथा'॥

(१७) कात्यायनधर्मशास्त्र

शुक्ल यजुर्वेद के सूत्रकारों में कात्यायन का नाम आता है। एक सूत्र को मनु० ८, २१५ पर मेधातिथि ने लिखा है और कहते हैं कि यह 'कात्यायनीयं सूत्रं' है। कात्यायनस्मृति पद्य में मिलती है जिसका उल्लेख विश्वरूप आदि करते हैं। कात्यायन स्मृति कहती है—

एषु वादेषु दिव्यानि प्रतिषिद्धानि यत्नतः।
कारयेत्सज्जनैस्तानि नाभिशस्तं त्यजेन्मनुः॥
या स्वपुत्रं तु जह्यात्स्त्री समर्थमपि पुत्रिणी।
आहृत्य स्त्रीधनं तत्र पित्र्यृणं शोधयेन्मुनिः॥

(ये श्लोक वर्तमान मनुस्मृति में नहीं मिलते)

अपरार्क (पृष्ठ ९४-९५) में तीन श्लोक कात्यायन के मिलते हैं—

वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा।
रक्तागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेद्वरम्॥
प्रदाय गच्छेच्छुल्कं यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा।
धार्या सा वर्षमेकं तु देयान्यस्मै विधानतः॥
पूर्वदत्ता तु या कन्या अन्येनोढा यदा भवेत्।
संस्कृतापि प्रदेया स्याद्यस्मै पूर्वं प्रतिश्रुता॥

(१८) प्राचेतसस्मृति

इनका नाम धर्मग्रन्थकारों में लिया गया है। इनका एक श्लोक मिलता है—

'कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च।
राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः'॥

पराशर

महर्षि पराशर की स्मृति कलियुग के लिए है जैसा कि स्वयं पुस्तक का कथन है 'कलौ पाराशराः स्मृताः।' आदित्यपुराण का कहना है कि—

यस्तु कार्तयुगो धर्मो न कर्तव्यं कलौ युगे।
पापप्रसक्तास्तु यतः कलौ नार्यो नरास्तथा॥

गरुड़पुराण अ० १०७ पराशरस्मृति का सारांश ३९ श्लोकों में देता है। पराशर का ही आश्रय लेते हुए ये श्लोक भी गरुडपुराण ने तैयार किये हैं। यथा—

'श्रुतिः स्मृतिः सदाचारो यः कश्चिद् वेदकर्तृकः।
वेदाः स्मृता ब्रह्मणादौ धर्मा मन्वादिभिः सदा॥
दानं कलियुगे धर्मः कर्तारं च कलौ त्यजेत्।
पापकृत्यं तु तत्रैव शापं फलति वर्षतः॥
आचारात्प्राप्नुयात्सर्वं षट्कर्माणि दिने दिने।
सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवातिथ्यादिपूजनम्'॥

इन श्लोकों की तुलना करने पर स्पष्ट पता चलेगा कि पराशर के श्लोकों का अक्षरशः अथवा कुछ परिवर्तन के साथ आशय लिया है। कौटिल्य ने ६ बार पराशर के विचारों का दिग्दर्शन कराया है।

ग्रन्थ-परिचय

प्रस्तुत पुस्तक बारह अध्यायों में विभक्त हैं। ग्रन्थ की समाप्ति होने पर बतलाया गया है कि यह पराशर का धर्मशास्त्र ५९२ श्लोकों का है। इसमें 'आचार' और 'प्रायश्चित्त' ये दो भाग हैं।

जितने ऋषियों के नाम पराशर ने गिनाये हैं उनके भाव अथवा श्लोक अवश्य लिए हैं। जैसे—

'मार्जार-मक्षिका-कीट-पतङ्ग-कृमि-दुर्दुराः।
मेध्यामेध्यं स्पृशन्तोऽपि नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्'॥ *(प० ३२। ३३)*
'गृध्रो द्वादशजन्मानि दशजन्मानि शूकरः।
श्वयोनौ सप्तजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत्'॥ *(प० १२। १३१)*

पराशर के कतिपय विचार उल्लेखनीय हैं। यथा—

(१) 'औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः'। *(प० ४। १४१)*

(२) 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।

पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते'॥ *(प० ४। ३०)*

भारत की तात्कालीन परिस्थिति का पता पराशर के इन श्लोकों से चलता है—

'देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि।
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत्॥
आपत्काले तु सम्प्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत्।
स्वयं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत्'॥

संक्षेपतः मैंने धर्मशास्त्र के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें बतलाने की चेष्टा की है। यदि इससे सुजन समाज को कुछ भी लाभ पहुँचा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। पुस्तक में जो त्रुटियाँ रह गयी हों उन्हें सुधारकर पढ़ने की कृपा करेंगे तथा मेरी धृष्टता के लिए क्षमा प्रदान करेंगे।

विनीत

मन्नालाल 'अभिमन्यु'

अनुक्रमणिका

॥ श्रीः ॥

पाराशरस्मृतिः

भाषाटीकासहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये।
व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा॥ १॥

मङ्गलाचरण के बाद हिमालयपर्वत के शिखर पर देवदारु के वन रूप घर में एकाग्रचित्त होकर बैठे हुए व्यास जी से प्राचीनकाल में ऋषियों ने पूछा॥ १॥

मानुषाणां हितं धर्मं वर्त्तमाने कलौ युगे।
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत!॥ २॥

हे सत्यवती के पुत्र! आप हम लोगों से मनुष्यों के जो धर्म इस कलियुग में हितकारी हो सकते हैं उन्हें तथा उनके शौच और आचार भी विधिपूर्वक कहें॥ २॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः।
प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः॥ ३॥

ऋषियों के इस वाक्य को सुनकर अपने शिष्यों के मध्य में बैठे, अग्नि-सूर्य की भाँति अति तेजवाले और श्रुति-स्मृति (वेद और धर्मशास्त्र) में परम निपुण श्रीव्यासजी ने कहा ॥ ३॥

न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहम्।
अस्मत्पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत्॥ ४॥

मैं सम्पूर्ण बातों का तत्त्व नहीं जानता। अतः धर्म किस तरह बतला

सकता हूँ? इस हेतु हमारे पिता से ही पूछना चाहिये— ऐसा पराशर के सुत व्यासजी ने कहा ॥ ४ ॥

ततस्ते ऋषयः सर्वे धर्मतत्त्वार्थकाङ्क्षिणः ।
ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता बदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर वे सब धर्म के तत्त्व को जानने की इच्छा रखने वाले ऋषि लोग व्यासजी को आगे कर बदरिकाश्रम को गये ॥ ५ ॥

नानापुष्पलताऽऽकीर्णं फलपुष्पैरलङ्कृतम् ।
नदीप्रस्रवणोपेतं पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥

वहाँ पर अनेक भाँति की फूली हुई लतायें फैल रही थीं, विविध प्रकार के फल और फूलों से बड़ी शोभा हो रही थी, नदियों के झरने बह रहे थे, अच्छे-अच्छे पवित्र तीर्थों से आश्रम सुहावना हो रहा था ॥ ६ ॥

मृगपक्षिनिनादाढ्यं देवताऽऽयतनावृतम् ।
यक्ष-गन्धर्व-सिद्धैश्च नृत्यगीतैरलङ्कृतम् ॥ ७ ॥

बहुत से मृग और पक्षियों के शब्द चारों और सुनाई दे रहे थे, देवताओं के मंदिरों का घेरा-सा बँध रहा था। यक्ष, गन्धर्व तथा सिद्ध लोगों के नृत्य और गान से अधिकतम शोभा हो रही थी ॥ ७ ॥

तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ।
सुखासीनं महात्मानं मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९ ॥

ऐसे आश्रम के बीच ऋषियों की जो सभा हो रही थी उसमें मुख्य- मुख्य मुनियों के मध्य सुखपूर्वक बैठे हुए शक्ति के पुत्र महात्मा श्री पराशरजी को ऋषियों के सहित श्री व्यासजी ने दोनों हाथ जोड़कर, प्रदक्षिणा, प्रणाम करके एवं स्तुतियों से भी सन्तुष्ट किया ॥ ९ ॥

अथ सन्तुष्टहृदयः पराशरमहामुनिः ।
आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुङ्गवः ॥ १० ॥

तब बैठे ही बैठे मुनि-पुङ्गव पराशर महामुनि ने अपने हृदय में बहुत प्रसन्न होकर कहा कि अपने शुभागमन का कारण कहिये ॥ १० ॥

कुशलं सम्यगित्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यनन्तरम्।
यदि जानासि भक्तिं मे स्नेहाद्वा भक्तवत्सल!॥ ११ ॥

श्रीव्यासजी ने भली-भाँति कुशल है ऐसा कहा और यों बोले कि हे भक्तवत्सल! यदि आप मेरी भक्ति अपने में जानते हैं अथवा आपका स्नेह मुझपर है तो ॥ ११ ॥

धर्मं कथय मे तात! अनुग्राह्यो ह्यहं तव।
श्रुता मे मानवा धर्मा वासिष्ठाः काश्यपास्तथा॥ १२ ॥

हे तात! मुझे धर्म का उपदेश दीजिये; क्योंकि मैं आपका अनुग्रह- पात्र हूँ। मैंने मनु, वसिष्ठ, कश्यप द्वारा कहे गये मानव धर्म सुने हैं ॥ १२ ॥

गार्गीया गौतमीयाश्च तथैवोशनसाः स्मृताः।
अत्रेर्विष्णोश्च संवर्ताद्दक्षादङ्गिरसस्तथा॥ १३ ॥
शातातपाच्च हारीताद्याज्ञवल्क्यात्तथैव च।
आपस्तम्बकृता धर्माः शङ्खस्य लिखितस्य च॥ १४॥
कात्यायनकृताश्चैव तथा प्राचेतसान्मुनेः।
श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रुत्यर्था मे न विस्मृताः॥ १५ ॥

गर्ग, गौतम, उशना, अत्रि, विष्णु, संवर्त, दक्ष, अंगिरा, शातातप, हारीत, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, शङ्ख, लिखित, कात्यायन तथा प्राचेतस मुनि के कहे हुए धर्मों को भी मैंने सुना है और आपने जो श्रुति (वेदों) के अर्थ मुझसे कहे हैं उन्हें भी मैं नहीं भूला हूँ॥ १३-१५॥

अस्मिन्मन्वन्तरे धर्माः कृतत्रेतादिके युगे।
सर्वे धर्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे॥ १६॥

इस वैवस्वत *मन्वन्तर में सत्ययुग और त्रेतादि (द्वापर) युग के जो धर्म हैं उनमें से सत्ययुग में तो सारे धर्म थे और कलियुग में सब-के-सब नष्ट हो गये हैं॥ १६ ॥

---

* देवताओं के ७१ युगों का एक मन्वन्तर होता है।

चातुर्वर्ण्यसमाचारं किञ्चित्साधारणं वद।
चतुर्णामपि वर्णानां कर्त्तव्यं धर्मकोविदैः॥ १७॥

चारों वर्णों का जो कुछ साधारण आचार है सो कहिये कि जिसे धर्म-निपुण चारों वर्ण के लोग करें॥१७॥

ब्रूहि धर्मस्वरूपज्ञ! सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात्।
व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः॥ १८॥
धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात्।
शृणु पुत्र! प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनयस्तथा॥ १९॥

हे धर्म के स्वरूप को जानने वाले! आप सूक्ष्म और स्थूल दोनों धर्म विस्तारपूर्वक कहिये। व्यास जी की बातें समाप्त हो जाने पर मुनियों में प्रधान पराशर जी धर्म का सूक्ष्म और स्थूल दोनों विधि का निर्णय विस्तारपूर्वक यों कहने लगे कि हे पुत्र! तुम सुनो और सारे मुनिगण भी सुनें॥ १८-१९॥

कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्त्या ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।
श्रुति-स्मृति-सदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा॥ २०॥

प्रत्येक कल्प (संसारोत्पत्ति काल) में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों क्षीण होकर उत्पन्न होते और श्रुति, स्मृति (धर्मशास्त्र) तथा सदाचार (तिथि, पर्व- होलिकादि) का निर्णय सदा करते हैं॥ २०॥

न कश्चिद्वेदकर्त्ता च वेदस्मर्त्ता चतुर्मुखः।
तथैव धर्मान्स्मरति मनुः कल्पान्तरेऽन्तरे॥ २१॥

वेद का कर्त्ता कोई नहीं है। चतुर्मुख ब्रह्मा ने वेद का स्मरण किया। इसी भाँति प्रति कल्पान्तर में मनुजी धर्मों का स्मरण करते हैं॥ २१॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे।
अन्ये कलियुगे पुंसां युगरूपानुसारतः॥ २२॥

सत्ययुग में पुरुषों के धर्म और ही थे और त्रेता में कुछ और तथा द्वापर में उससे भी भिन्न थे। इसी भाँति कलियुग के धर्म दूसरे ही हैं। जैसा युग वैसा धर्म होता है॥ २२॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥ २३॥

सत्ययुग में तपस्या ही बड़ा धर्म था। त्रेता में ज्ञान को परम धर्म मानते थे, द्वापर में यज्ञ को,तथा कलियुग में केवल दान ही धर्म है॥ २३॥

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः।
द्वापरे शङ्खलिखितौ कलौ पाराशराः स्मृताः॥ २४॥

सत्ययुग में मनु के कहे हुए धर्म, त्रेता में गौतम के, द्वापर में शङ्ख तथा लिखित के और कलियुग में पराशर के धर्म माने जाते हैं॥ २४॥

त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत्।
द्वापरे कुलमेकं तु कर्त्तारं च कलौ युगे॥ २५॥

सत्ययुग में पाप करने वाले को देश छोड़ना चाहिए, त्रेता में उस गाँव को, द्वापर में उसके कुल को और कलियुग में उस करने वाले को ही त्यागना होता है॥ २५॥

कृते सम्भाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च।
द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा॥ २६॥

सत्ययुग में पापी के साथ बोलने ही से, त्रेता में स्पर्श करने से, द्वापर में उसका अन्न लेने से मनुष्य पतित होता है और कलियुग में तो पापकर्म करने से ही पतित होता है॥ २६॥

कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः।
द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु॥ २७॥

सत्ययुग में कोई शाप दे तो उसी क्षण उसका प्रभाव हो जाता है, त्रेता में दस दिन के बीच, द्वापर में एक महीने पर और कलियुग में वर्ष भर के अनन्तर होता है॥ २७॥

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते।
द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ॥ २८॥

सत्ययुग में ब्राह्मण के घर पर जाकर लोग दान देते थे। त्रेता में बुलाकर, द्वापर में माँगने पर और कलियुग में जो सेवा करे उसे देते हैं॥ २८॥

अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम्।
अधमं याचमानं स्यात्सेवादानं तु निष्फलम्॥ २९॥

किसी के घर पर जाकर देना उत्तम दान है, बुलाकर देना मध्यम, माँगने पर देना अधम है और सेवा करने पर दिया गया दान वह निष्फल होता है॥ २९॥

जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च।
जिताश्चौरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः॥ ३०॥

कलियुग में धर्म से अधर्म प्रबल होता है, सच्चे से झूठा, राजाओं से चोर लोग और पुरुषों से स्त्री प्रबल होती है॥ ३०॥

सीदन्ति चाऽग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति।
कुमार्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन्कलियुगे सदा॥ ३१॥

अग्निहोत्र के कर्म ढीले पड़ जाते हैं, गुरुओं की पूजा नष्ट हो जाती है और अविवाहित लड़कियों के बच्चे जन्मते हैं। यही बर्ताव सदा होता है॥ ३१॥

कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाश्रिताः।
द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः॥ ३२॥

सत्ययुग में प्राण हड्डियों में रहता था, त्रेता में मांस में, द्वापर में रुधिर के बीच और कलियुग में अन्नादि [खाने-पीने] में (प्राण) रहता है॥ ३२॥

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः।
तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः॥ ३३॥

प्रत्येक युग के जो धर्म हैं और उन-उन युगों में जो द्विज होते हैं उनकी निन्दा करनी योग्य नहीं; क्योंकि वे युगों के रूप ही हैं॥ ३३॥

युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम्।
पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते॥ ३४॥

युग-युग के सामर्थ्य तथा जो विशेष बातें हैं उन्हें और अनेक मुनियों ने अथवा पराशर ने भी कहा है। उससे जो कुछ शेष अर्थ न्यून वा अधिक हो उसी में प्रायश्चित्त होता है॥ ३४॥

अहमद्यैव तत्सर्वमनुस्मृत्य ब्रवीमि वः।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वन्तु मुनिपुङ्गवाः ॥ ३५ ॥

मैं आज ही उन सब का स्मरण कर आप लोगों से चारों वर्णों के समाचार कहता हूँ। हे ऋषिश्रेष्ठ ! आप लोग सुनें ॥ ३५ ॥

पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ ३६ ॥

इस पराशर द्वारा कथित धर्मशास्त्र का पाठ करने से पुण्य होता है, अनुष्ठान करने से पवित्र स्वर्गदायक होता है और यह पापनाशक है, ब्राह्मणों के निमित्त और धर्मस्थापन के लिए इसका विचार किया गया ॥ ३६ ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥ ३७ ॥

चारों वर्णों का धर्म आचार से ही पालित होता है और जिनका शरीर आचार से भ्रष्ट है उनसे धर्म भी विमुख हो जाता है ॥ ३७ ॥

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवताऽतिथिपूजकः।
हुतशेषं तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ३८ ॥

छः कर्मो में सदा रत रहने वाला और देवता तथा अतिथियों का पूजन करने वाला और हुतशेष अर्थात् वैश्वदेवकर्म से बचा हुआ अन्न ग्रहण करने वाला जो ब्राह्मण है उसे दोष नहीं होता है ॥ ३८ ॥

सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने ॥ ३९ ॥

तीनों संध्याओं में स्नान, गायत्रीजप, होम, देवताओं का पूजन, अतिथिसत्कार और बलिवैश्वदेव, ये छः कर्म प्रतिदिन कर्त्तव्य हैं ॥ ३९ ॥

इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा।
सम्प्राप्तो वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः ॥ ४० ॥

मित्र हो अथवा शत्रु, मूर्ख हो वा पण्डित, चाहे कैसा भी मनुष्य बलि-वैश्वदेव के अन्त में आ जाये तो वह स्वर्ग प्राप्त करानेवाला अतिथि कहलाता है ॥ ४० ॥

दूराच्चोपगतं श्रान्तं वैश्वदेवे उपस्थितम्।
अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः॥ ४१॥

जो दूर से आया हो, थका हो और वैश्वदेव के समय पहुँचा हो उसे अतिथि जानो; न कि जो पहले आ गया हो॥ ४१॥

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा।
अनित्यं ह्यागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥ ४२॥

एक ही गाँव के रहने वाले को अतिथि समझ कर कभी न ग्रहण करना क्योंकि अतिथि का अर्थ यही है कि जो नित्य न आये॥ ४२॥

अतिथिं तत्र सम्प्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना।
तथाऽऽसनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च॥ ४३॥

उक्त समय में आये हुए अतिथि का स्वागत करके आसन देकर और पाँव धोकर पूजन करे॥ ४३॥

श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद्गृही॥ ४४॥

श्रद्धापूर्वक भोजन देने से, उसके प्रिय सवाल-जवाब की बातें पूछने और कहने से और जब चलने लगे तो उसके पीछे-पीछे कुछ दूर तक पहुँचाने से गृहस्थ को उसे प्रसन्न करना चाहिये॥ ४४॥

ऽतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते।
पितरस्तस्य नाऽश्नन्ति दश वर्षाणि पञ्च च॥ ४५॥

जिसके घर से अतिथि निराश होकर चला जाता है, उसके पितर लोग पन्द्रह वर्ष तक भोजन नहीं लेते॥ ४५॥

काष्ठभारसहस्रेण घृतकुम्भशतेन च।
अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः॥ ४६॥

जिसका अतिथि निराश हुआ वह चाहे १००० ईंधन के भार से और १०० घड़े घी से भी होम करे तो भी वह निष्फल है॥ ४६॥

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम्।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति॥ ४७॥

अच्छे खेत में बीज बोना और सुपात्र को धन देना चाहिये; क्योंकि सु-खेत में बोया और सु-पात्र में निक्षेप किया हुआ धन नष्ट नहीं होता॥ ४७॥

न पृच्छेद्गोत्रचरणे स्वाध्यायं च व्रतानि च।
हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि सः॥ ४८॥

ऐसे अतिथि का गोत्र और शास्त्र तथा वेद और व्रत नहीं पूछना चाहिए। उस पर अपना चित्त लगावे वही सर्वदेवस्वरूप होता है॥ ४८॥

अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चातिथिर्यथा।
वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वं दिने दिने॥ ४९॥

अच्छे व्रतवाला ब्राह्मण अतिथि और वेदाभ्यास में रत रहने वाला (ब्रह्मचारी) मनुष्य, ये प्रतिदिन भी आवें तो इन्हें अपूर्व ही जानना चाहिये॥ ४९॥

वैश्वदेवे तु सम्प्राप्ते भिक्षुके गृहमागते।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत्॥ ५०॥

वैश्वदेव के समय में यदि कोई भिक्षुक घरमें आ जावे तो वैश्वदेव के लिये अन्न निकाल कर शेष उस भिखारी को भिक्षा देकर विदा कर देना॥ ५०॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ।
तयोरन्नमदत्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ ५१॥

पके हुए अन्न के स्वामी सन्यासी और ब्रह्मचारी ये दोनों ही हैं। इन्हें बिना दिये यदि भोजन करें तो चान्द्रायण व्रत करना उचित है॥ ५१॥

दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम्।
इच्छया च ततो दद्याद्विभवे सत्यवारितम्॥ ५२॥

सन्यासी और ब्रह्मचारी इन दोनों को पहले तीनों भिक्षा अर्थात् जल, अन्न, पुनः जल देकर यदि सामर्थ्य हो तो यथारुचि और भी वस्तु देवे, कुछ निषेध नहीं है॥ ५२॥

यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्ष्यं दद्यात् पुनर्जलम्।
तद्भैक्ष्यं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम्॥ ५३॥

यति के हाथ में पहले जल देना तब भिक्षा, अनन्तर पुनः जल देना। ऐसा करने से वह भिक्षा मेरु पर्वत के तुल्य और वह जल समुद्र के तुल्य होता है॥५३॥

यस्य छत्रं हयश्चैव कुञ्जरारोहमृद्धिमत्।
ऐन्द्रस्थानमुपासीत तस्मात्तं न विचारयेत्॥५४॥

जिससे छत्र, घोड़े, हाथी और ऋद्धिवाले ऐन्द्रस्थान को वह पहुँचता है। इस हेतु उस (यति के पूज्य-अपूज्य) का विचार नहीं करना चाहिये॥५४॥

वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम्।
न हि भिक्षुकृतान्दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति॥५५॥

वैश्वदेव में जो पाप किया हो उसे भिक्षु हटा सकता है परन्तु भिक्षुक के प्रति जो दोष किया हो उससे वैश्वदेव नहीं छुड़ा सकता॥५५॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जन्ते ये द्विजातयः।
तेषामन्नं न भुञ्जीत काकयोनिं व्रजन्ति ते॥५६॥

जो द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) वैश्वदेव के किए बिना ही भोजन कर लेते हैं उनका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे काकयोनि में जाते हैं॥५६॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जन्ते ये द्विजाधमाः।
सर्वे ते निष्फला ज्ञेया पतन्ति नरकेऽशुचौ॥५७॥

जो द्विजाधम बिना वैश्वदेव किये ही भोजन करते हैं वे सब निष्फल होते और अपवित्र नरक में गिरते हैं॥५७॥

वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृताः।
सर्वे ते नरकं यान्ति काकयोनिं व्रजन्ति च॥५८॥

जो वैश्वदेव कर्म से रहित हैं और अतिथि सत्कार से बहिर्मुख हैं वे सब नरक और काकयोनि में जाते हैं॥५८॥

पापी वा यदि चाण्डालो विप्रघ्नः पितृघातकः।
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः॥५९॥

पापी, चाण्डाल, ब्राह्मण का हत्यारा अथवा पितृघाती भी हो, और वैश्वदेव के समय में आ जावे तो वह स्वर्गप्रद होता है॥ ५९॥

यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः।
वामपादे करं न्यस्य तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥ ६०॥

शिर में पगड़ी आदि लपेट कर जो भोजन करता और जो दक्षिण की ओर मुँह करके तथा बायें पाँव पर हाथ रख कर भोजन करता है वे सब मानो राक्षस प्रवृत्ति से भोजन करते हैं॥ ६०॥

यतये काञ्चनं दत्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे।
चौरेभ्योऽप्यभयं दत्वा दातापि नरकं व्रजेत्॥ ६१॥

यदि सन्यासी को सोना दे, ब्रह्मचारी को पान दे और चोरों को अभयदान दे तो वह दाता भी नरक को प्राप्त होता है॥ ६१॥

शुक्लवस्त्रं च यानं च ताम्बूलं धातुमेव च।
प्रतिगृह्य कुलं हन्यात्प्रतिगृह्णाति यस्य च॥ ६२॥

जो यती अथवा ब्रह्मचारी शुक्ल वस्त्र, सवारी, ताम्बूल और धातु का दान ग्रहण करे तो वह अपने और देने वाले दोनों के कुल की हत्या करता है॥ ६२॥

न गृह्णाति तु यो विप्रो ह्यतिथिं वेदपारगम्।
अदत्तं चान्नमात्रं तु भुक्त्वा भुंक्ते तु किल्बिषम्॥ ६३॥

जो ब्राह्मण वेदपारग अतिथि का स्वागत किये बिना ही अन्न खाता है, तो वह पाप ही भोजन करता है॥ ६३॥

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरूषरमकण्टकम्।
वापयेत्सर्ववस्तूनि सा कृषिः सर्वकामिका॥ ६४॥

ब्राह्मण का मुख काँटे और ऊसर रहित खेत के तुल्य है। इस हेतु उसमें सब प्रकार के बीज बोने चाहिये; क्योंकि वह खेती सब कामनाओं को देती है॥ ६४॥

अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदो हि सः॥ ६५॥

जिस गाँव में अनपढ़े और बिना (ब्रह्मचर्य) व्रत के द्विज भिक्षाचरण करते हों उस ग्राम को राजा दण्ड देवे; क्योंकि वह ग्राम चोरों को अन्न देने वाला है॥ ६५॥

क्षत्रियो हि प्रजा रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रदण्डवान्।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्॥ ६६॥

क्षत्रिय को चाहिये कि प्रजा की रक्षा करे। हाथ में शस्त्र धारण किये ही रहे। दण्ड भलीभाँति दे और दूसरे की सेनाओं को जीत कर धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करे॥ ६६॥

न श्रीः कुलक्रमाज्जाता भूषणोल्लिखिताऽपि वा।
खड्गेनाक्रम्य भुञ्जीत वीरभोग्या वसुन्धरा॥ ६७॥

किसी के कुल में परम्परा से लक्ष्मी नहीं जन्मी हैं, और न किसी के भूषण में लिखी (खुदी हुई) हैं। इस हेतु अपने खड्ग के बल से लेकर उसका भोग करे; क्योंकि वसुन्धरा वीरों ही के भोगने के योग्य है॥ ६७॥

पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवाऽऽरामे न यथाऽङ्गारकारकः॥ ६८॥

जिस भाँति माली फुलवारी में केवल फूल चुनता है, जड़ समेत उन्हें नहीं उखाड़ता; इसी भाँति राजा भी प्रजा से थोड़ा-थोड़ा धन लेवै और कोयला बनानेवालों की भाँति जड़-मूल से उनका उच्छेदन न करे॥ ६८॥

[1]लाभकर्म तथा रत्नं गवां च प्रतिपालनम्।
कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता॥ ६९॥

वैश्यों की वृत्ति है लेन-देन का व्यवहार करना, रत्नों का क्रय-विक्रय करना, गौओं का पालन और वाणिज्य करना॥ ६९॥

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते।
अन्यथा कुरुते किञ्चित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम्॥ ७०॥

शूद्र का परम धर्म द्विजों की सेवा करना है। इसके अतिरिक्त जो कुछ वह करता है, वह सब निष्फल होता है॥ ७०॥

---

१. 'लौह कर्म' इति पाठान्तरम्।

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः।
न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम्॥ ७१ ॥

शूद्रों को लवण, मधु, तेल, दही, छाछ, घी और दूध इनका दोष नहीं, सब के पास बेच सकता है॥ ७१ ॥

विक्रीणन्मद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्य च भक्षणम्।
कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात्॥ ७२ ॥

मद्य और मांस को बेचने, अभक्ष्य (गो-मांसादि) के भक्षण करने और अगम्या स्त्री का गमन करने से उसी क्षण शूद्र पतित हो जाता है।।७२।।

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च।
वेदाक्षरविचारेण [१]शूद्रस्य नरकं ध्रुवम्॥ ७३ ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे चातुर्वर्ण्याचारो नाम प्रथमोध्यायः॥ १ ॥

कपिला गौ का दूध पीने से, ब्राह्मणी का संग करने से और वेद के अक्षरों का विचार करने से शूद्र को नरक अवश्य होता है॥ ७३ ॥

पाराशरोय धर्मशास्त्र में चातुर्वर्ण्याचार नामक

प्रथम अध्याय समाप्त॥ १॥

१. 'शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्' इति केचित्। 'शूद्रः पतति तत्क्षणात्' इत्यपरे।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे।
धर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम्॥ १ ॥

पहले अध्याय में विशेष और साधारण धर्म कहे। अब दूसरे अध्याय में ग्रन्थकार प्रतिज्ञा करते हैं कि इसके अनन्तर गृहस्थ का जो आचरण कलियुग में चारों वर्णों के क्रम से चला आया है॥ १ ॥

तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पराशरवचो यथा।
षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत्॥ २ ॥

उसे मैं उसी भाँति कहूँगा, जैसे पहले पराशर का वचन है, छहों कर्म में निरत ब्राह्मण को खेती भी करानी चाहिये॥ २ ॥

क्षुधितं तृषितं श्रान्तं बलीवर्दं न योजयेत्।
हीनाङ्गं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत्॥ ३ ॥

भूखे, प्यासे और थके हुए बैल को जूए में न जोते। जो बैल अङ्गहीन हो, अथवा रोगी हो, तथा क्लीब (बधिया किया) हो उसे तो हल में बाँधना ही नहीं चाहिये॥ ३ ॥

स्थिराङ्गं नीरुजं दृप्तं सुनर्दं षण्ढवर्जितम्।
वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत्॥ ४ ॥

जिस बैल के अङ्ग दृढ़ हों, रोगरहित हो, दर्प से भरा हो, डकारें मारता हो, बधिया न हो इस भाँति के बैल को आधा दिन जोते, बाद में स्नान करे॥ ४ ॥

जप्यं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत्।
एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्भोजयेत्स्नातकान् द्विजः॥ ५ ॥

द्विजों को चाहिये कि वे जप, देवपूजन, होम और वेद का अध्ययन प्रतिदिन करें और एक, दो, तीन या चार स्नातक ब्रह्मचारियों को भोजन करायें॥ ५ ॥

स्वयंकृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः।
निर्वपेत्पञ्चयज्ञानि क्रतुदीक्षाञ्च कारयेत्॥ ६॥

अपने जोते खेत में अपने कमाने से जो अन्न हो उनसे पाँच यज्ञ (बलिवैश्वदेव आदि) और बड़े यज्ञों को भी करायें॥ ६॥

तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतः समाः।
विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः॥ ७॥

तिल और रस (घी, तेल आदि) कभी न बेचें; यदि बेचें तो अन्न से बदला कर लें। ब्राह्मण की वृत्ति ऐसी होती है, तृण और काठ आदि का विक्रय कर ले॥ ७॥

ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात्।
अष्टगव्यं धर्महलं षड्गवं वृत्तिलक्षणम्॥ ८॥

ब्राह्मण खेती करे तो उसको बड़ा दोष लगता है। आठ बैल का हल धर्महल होता हैं, और छः बैलों से वृत्ति के लिये हल जोते॥ ८ ॥

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत्।
द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम्॥ ९॥

चार बैलों से निर्दयी लोगों के और दो बैलों से गौ की हत्या करने वालों के जैसा होता है। दो बैलों का हल प्रहर भर जोतना चाहिये, चार बैलों का दो प्रहर तक॥ ९ ॥

षड्गवं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत्।
नाप्नोति नरकेष्वेवं वर्त्तमानस्तु वै द्विजः॥ १०॥

छः बैलों को तीन प्रहर तक तथा आठ बैलों से पूरे दिन भर जोते। इस भाँति जो द्विज व्यवहार करता है, वह नरक में नहीं जाता॥ १०॥

दानं दद्याच्च वै तेषां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्।
संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात्॥ ११॥

दान भी दे तो उन कर्षकों का यह अत्युत्तम स्वर्ग-साधन होता है। जो पाप मछली मारने वाले को बर्ष भर में होता है॥ ११॥

अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली।
पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा॥ १२॥

उतना पाप लोहे जड़े हुए काठ के हल से एक ही दिन में हल जोतने वाले को होता है। जितना फाँसी देने वाला, मछली मारने वाला, व्याध (शिकारी) तथा चिड़ीमार को होता है॥ १२॥

अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः।
कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भोऽथ मार्जनी॥ १३॥
पञ्चसूना गृहस्थस्य ह्यहन्यहनि वर्त्तते।
वैश्वदेवो बलिर्भिक्षा गोग्रासो हन्तकारकः॥ १४॥

और जो अदाता, खेतिहर है ये पाँचों तुल्य पाप के भागी होते हैं। ओखली, चक्की, चूल्हा, पानी का घड़ा, मार्जनी (झाड़ू) ये पाँचों हत्या के स्थान गृहस्थ को प्रतिदिन होते हैं। यदि वैश्वदेव, बलि, भिक्षा, गोग्रास, और हन्तकार॥ १३-१४॥

गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात्सूनादोषैर्न लिप्यते।
वृक्षांश्छित्वा महीं भित्वा हत्वा च कृमिकीटकान्॥ १५॥

वृक्ष को काट, पृथ्वी को फाड़ और भूमिस्थ कीटों को मार कर यदि प्रतिदिन गृहस्थ करे तो उसे पूर्वोक्त हत्या के दोष नहीं लगते॥ १५॥

कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।
यो न दद्याद्द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः॥ १६॥

जो अन्न की राशि पर आये हुए द्विजों को नहीं देता वह खेतिहर खलयज्ञ के द्वारा सब पापों से छूट जाता है॥ १६॥

स चौरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत्।
राज्ञे दत्वा तु षड्भागं देवानां चैकविंशतिम्॥ १७॥

वह पापी, चोर और ब्रह्मघाती कहलाता है। जो राजा को छठा भाग और देवता को इक्कीसवाँ भाग नहीं देता॥ १७॥

विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत्॥ १८॥

और ब्राह्मणों को तीसवाँ भाग देकर सब पापों से मुक्त होता है। क्षत्रिय भी खेती करके देवता और ब्राह्मणों की पूजा करे॥ १८॥

वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकान्।
विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजसेवाविवर्जिताः॥ १९॥
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै निरयं यान्त्यसंशयम्।
चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः॥ २०॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे गृहस्थधर्माचारो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

वैश्य तथा शूद्र भी खेती, वाणिज्य और शिल्प (कारीगरी) करें। जो शूद्र ब्राह्मण की शुश्रूषा (सेवा) छोड़ देते हैं वे अपने कर्म से विरुद्ध कर्म करने वाले होते हैं। वे थोड़े दिनों जीते हैं और निश्चय करके नरक में जाते हैं। यह धर्म चारो वर्णों का सनातन से चला आ रहा है॥ १९-२०॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में गृहस्थधर्माचार नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा।
दिनत्रयेण शुध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके॥ १॥

अब जन्म और मरण में जितने दिनों में शुद्धि होती है उसे कहूँगा। मरण शौच में ब्राह्मण लोग तीन दिन में शुद्ध होते हैं॥ १ ॥

क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकैः।
शूद्रः शुध्यति मासेन पराशरवचो यथा॥ २॥

पराशर के वचनानुसार क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र महीने भर में शुद्ध होता है। (सपिण्डी के मरण में यह शुद्धि जानना)॥ २ ॥

उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिश्च जायते।
ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते॥ ३॥

अग्निहोत्र आदि कर्मों की उपासना के लिये तो उतने समय तक ब्राह्मणों का अङ्ग शुद्ध हो जाता है और प्रसूति अर्थात् जननाशौच में ब्राह्मणों का शरीर स्पर्श करने में कुछ दोष नहीं है॥ ३॥

जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति॥ ४॥

पुत्र आदि के जन्म होने पर ब्राह्मण दस दिनों में, क्षत्रिय १२ दिनों में, वैश्य १५ दिनों में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है॥ ४॥

एकाहाच्छुध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः॥ ५॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्र करता हो और वेद भी पढ़ा हो वह एक ही दिन में शुद्ध हो जाता है। यदि केवल वेद ही पढ़ा हो तो तीन दिन में और जो दोनों से रहित हो वह दस दिन में शुद्ध होता है॥ ५॥

जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः।
नामधारकविप्रस्य दशाहं सूतकं भवेत्॥ ६॥

जो ब्राह्मण जन्म प्रभृति अपने कर्मों से परिभ्रष्ट हो, सन्ध्योपासन भी न करता हो और नाममात्र का ही ब्राह्मण कहलाता हो तो उसे दस दिन अशौच लगता है॥ ६॥

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका।
दशरात्रेण संशुध्येद्भूमिष्ठं च नवोदकम्॥ ७॥

बकरी, गाय, भैंस और ब्राह्मणी ये सब नवप्रसूता हों तो दस दिनों में शुद्ध होते हैं; तथा नया पानी बरसा हो और भूमि पर पड़ा हो तो वह भी दस दिनों में शुद्ध होती है॥ ७ ॥

एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः।
जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत्॥ ८॥

जो सपिण्ड हैं परन्तु भिन्न जाति की स्त्री से जन्मे हुये हैं वे दायाद कहलाते हैं। उन्हें भी जन्म और मरण में अपने पिता का सा अशौच होता है॥ ८॥

प्राप्नोति सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु।
दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वात्मवंशजः॥ ९॥

इन दायादों की सपिण्डता तीन पुरुष तक रहती है और उतने ही तक यह गोत्र का अशौच भी उन्हें रहता है। चौथे पुरुष में उनकी दायादता छूट जाती है अर्थात् आदि पुरुष से पाँचवाँ दायाद नहीं रहता है॥ ९॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्णिशाः पुंसि पञ्चमे।
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात्॥ १०॥

चौथे तक दस दिन का, पाँचवें में छः दिन, छठे में चार दिन और सातवें में तीन दिन का अशौच होता है॥ १०॥

भृग्वग्निमरणे चैव देशान्तरमृते तथा।
बाले प्रेते च सन्न्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते॥ ११॥

पहाड़ से गिर कर, अग्नि से जल कर, परदेश में, जन्म काल ही में और सन्यास लेकर जिसका मरण हो उसका अशौच उसी क्षण स्नान करने से निवृत्त हो जाता है॥ ११॥

देशान्तरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि।
न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत्॥ १२॥

यदि कोई देशान्तर में अपना सपिण्डी मर जाय और वर्षदिन के बाद सुने तो उसका त्रिरात्रि आदि नहीं लगता; वह स्नान करके उसी क्षण शुद्ध हो जाता है॥ १२॥

देशान्तरं गतो विप्रः प्रवासात्कालकारितात्।
देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि॥ १३॥
कृष्णाष्टमी त्वमावस्या कृष्णा चैकादशी च या।
उदकं पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत्॥ १४॥

कोई ब्राह्मण परदेश में मृत्यु को प्राप्त हो गया हो और उसके मरण की तिथि ज्ञात न हो तो कृष्णपक्ष की अष्टमी, अमावस और एकादशी को उसका पिण्डोदक दान करना तथा श्राद्ध भी करना चाहिये॥ १३-१४॥

अजातदन्ता ये बाला ये न गर्भाद्विनिःसृताः।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया॥ १५॥

जिन बालकों को दाँत न उगे हों और जो गर्भ से निकलते ही मर गये हों उनके मरने पर अग्निदाह, अशौच और जल दानादिक नहीं होते॥ १५॥

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः।
यावन्मासस्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम्॥ १६॥

यदि किसी स्त्री का गर्भपात अथवा गर्भस्राव हो गया हो तो जितने महीने का वह हो उतने ही दिन उसका सूतक जानना॥ १६॥

आ चतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः।
अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत्॥ १७॥

चार महीने तक गर्भ गिरे तो उसे 'स्राव' कहते है; पाँचवे या छठें मास में गिरे तो उसे 'पात' कहते हैं। इसके उपरान्त गिरे तो वह 'प्रसव' ही गिना जाता है; उसका सूतक दस दिनों तक होता है॥ १७॥

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते।
अग्निसंस्करणे तेषां त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥ १८॥

दाँत उगा हो या न उगा हो और चौलकर्म हो जाने पर यदि बालक की मृत्यु हो तो अग्निदाह करने पर सपिण्डों को तीन दिनों का अशौच होता है॥ १८॥

आ दन्तजन्मनः सद्य आ चूडान्नैशिकी स्मृताः।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम्॥ १९॥

दाँत जमने तक उसी क्षण, उससे उपरान्त चौल होने तक एक दिन, चौल होने पर व्रतबन्ध होने तक तीन दिन और व्रतबन्ध होने पर दस दिन का अशौच होता है॥ १९॥

ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशनः।
सम्पर्कं चेन्न कुर्वीत न तेषां सूतकं भवेत्॥ २०॥

ब्रह्मचारी को और जिसके गृह में अग्निहोत्र होता हो उन्हें, यदि अशौचवालों से खाने-पीने बैठने का संसर्ग न रखे तो, जन्म और मरण का अशौच नहीं लगता॥ २०॥

सम्पर्काद् दूष्यते विप्रो जनने मरणे तथा।
सम्पर्केषु निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम्॥ २१॥

जन्म अथवा मरण में ब्राह्मण सम्पर्क से ही दोष का भागी होता है। यदि सम्पर्क न करे तो उसे जननाशौच या मरणाशौच नहीं लगता॥ २१॥

शिल्पिनः कारुका[1] वैद्या दासीदासाश्च नापिताः।
राजानः श्रोत्रियाश्चैव सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः॥ २२॥

शिल्पी (चितेरा), कारुक (बढ़ई, जुलाहा, नाई, धोबी, चमार), वैद्य, दासी, दास, नाई, राजा, और श्रोत्रिय (वेदपाठी) इन सब की अशौच-शुद्धि उसी क्षण हो जाती है॥ २२॥

सव्रतो सत्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः।
राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः॥ २३॥

कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत को करने वाले, सत्र (यज्ञ) से पवित्र हुए और अग्निहोत्र करने वाले द्विज और राजाओं को सूतक नहीं होता तथा जिसे राजा चाहे उसे भी सूतक नहीं होता है।। २३।।

उद्यतो निधने दाने आर्तो विप्रो निमन्त्रितः।
तदैव ऋषिभिर्दृष्टं यथाकालेन शुध्यति॥ २४॥

मरने के लिये तत्पर, और जो अति व्याधि आदि से पीड़ित दान में नेंवता हुआ ब्राह्मण—इन्हें भी ऋषियों ने कहा है कि वे सब अपने-अपने कार्य-समय में शुद्ध हो जाते हैं॥ २४॥

प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात्सङ्करं यदि।
दशाहाच्छुध्यते माता त्ववगाह्य पिता शुचिः॥ २५॥

यदि गृहस्थ पुत्रादि के जन्म होने से प्रसूति का स्पर्श न करे तो पिता उसी क्षण स्नान करके शुद्ध हो जाता है; और माता दस दिनों में शुद्ध होती है॥ २५॥

---

१. तथा च तन्तुवायश्च नापितो रजकस्तथा।
पञ्चमश्चर्मकारश्च कारवः शिल्पिनो मताः॥

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम्॥
सूतकं मातुरेव स्यादपस्पृश्य पिता शुचिः॥ २६॥

मरण में तो जितने उसके सपिण्ड हैं उन सबको छूना नहीं चाहिये और जन्म होने में केवल पिता और माता ही को नहीं स्पर्श करना चाहिये। उसमें भी पिता तो स्नान-आचमन करने के अनन्तर स्पर्श योग्य हो जाता है; परन्तु माता दस दिन तक बराबर अशुद्ध रहती है॥ २६॥

यदि पत्न्यां प्रसूतायां सम्पर्कं कुरुते द्विजः।
सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित्॥ २७॥

स्त्री को प्रसव हो और ब्राह्मण उसको स्पर्श आदि कर ले तो वह वेद के षडङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द) का ज्ञाता क्यों न हो, तो वह भी दस दिन बराबर अशुद्ध रहेगा॥ २७॥

सम्पर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोऽस्ति वै द्विजे।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पर्कं वर्जयेद् बुधः॥ २८॥

सम्पर्क से द्विज को दोष होता है अन्य दोष उसको नहीं है। इस हेतु बुद्धिमान् को चाहिये कि सर्वथा उसके सम्पर्क से बचा रहे॥ २८॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके।
पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति॥ २९॥

विवाह, उत्सव और यज्ञ इनके मध्य यदि जन्म या मरण हो जाय तो पहले सङ्कल्प किये हुये द्रव्यों को देने में दोष नहीं होता॥ २९॥

अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनि।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम्॥ ३०॥

यदि एक अशौच पड़ा हो और दस दिन के भीतर ही दूसरा जन्म अथवा मरण पुनः हो जाये तो पहले अशौच के दस दिनों में ही उस दूसरे की भी शुद्धि हो जाती है। कोई-कोई इस वचन का अर्थ यों करते हैं कि जब तक बीच में आ पड़े हुए दूसरे अशौच के दस दिन पूरे न हो लें तब तक बराबर ब्राह्मण को अशौच रहता है॥ ३०॥

ब्राह्मणार्थे विपन्नानां वन्दिगोग्रहणे तथा।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम्॥ ३१॥

जिनका मरण ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त, बन्दी और गाय को छुड़ाने में हुआ हो तथा संग्राम में जो मरे हों उनका एक दिन-रात अशौच होता है॥ ३१॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥ ३२॥

ये दोनों पुरुष सूर्य के मण्डल को वेध कर स्वर्ग में जाते हैं—एक योग करने वाला सन्यासी और दूसरा रण में सन्मुख होकर मरनेवाला॥ ३२॥

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः।
अक्षयांल्लभते लोकान् यदि क्लीबं न भाषते॥ ३३॥

शूर मनुष्य चाहे जहाँ कहीं भी शत्रुओं के घेरे में पड़ कर मारा जाय परन्तु यदि कातर वचन न बोला हो तो उसे अक्षयलोक मिलते हैं॥३३॥

संन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः।
एष मे मण्डलं भित्वा परं स्थानं प्रयास्यति॥ ३४॥

सन्यास ग्रहण किये हुए ब्राह्मण को देखकर सूर्य काँप उठते हैं कि 'यह मेरा मण्डल बेध कर ब्रह्मलोक में जायेगा॥ ३४॥

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समन्ततः।
परित्राता यदा गच्छेत्स च क्रतुफलं लभेत्॥ ३५॥

सेनाओं के इधर-उधर भागने पर उनकी रक्षा के लिये जो शूर सन्मुख होता है, उसे यज्ञ करने का फल होता है॥ ३५॥

यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शर-मुद्गर-यष्टिभिः।
देवकन्यास्तु तं वीरं हरन्ति रमयन्ति च॥ ३६॥

जिस वीर पुरुष के शरीर में बाण, मुद्गर और लाठियों की चोट से घाव हो जाता है उसे देवताओं की कन्याएँ अपने साथ ले जाकर उसके साथ विहार करती हैं॥ ३६॥

देवाङ्गनाः सहस्राणि शूरमायोधने हतम्।
त्वरमाणाः प्रधावन्ति 'मम भर्त्ता ममेति' च॥ ३७॥

हजारों देवाङ्गनाएँ रण में मारे हुए शूर के निकट यों कहती हुई दौड़कर आती हैं कि 'यह मेरा भर्ता है' 'यह मेरा भर्ता है' ॥ ३७ ॥

ये यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः, स्वर्गैषिणो यत्र यथैव यान्ति।
क्षणेन यान्त्येव हि तत्र वीराः, प्राणान्सुयुद्धेन परित्यजन्तः ॥ ३८ ॥

जिस स्वर्ग में सैकड़ों यज्ञ और तपस्या से विप्र लोग जिस भाँति जाते हैं, उसी भाँति अच्छे युद्ध में प्राण देकर वीर लोग भी वहाँ पर एक ही क्षण में जाते हैं ॥ ३८ ॥

जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि सुराङ्गना।
क्षणध्वंसिनि कायेऽस्मिन् का चिन्ता मरणे रणे ॥ ३९ ॥

जीत हो तो सम्पदा मिले और मरण से देवाङ्गना मिले तो ऐसे रण में इस क्षणभङ्गी काया के मरने की कौन चिन्ता है? ॥ ३९ ॥

ललाटदेशे रुधिरं स्रवच्च, यस्याहवे तु प्रविशेच्च वक्त्रम्।
तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं, सङ्ग्रामयज्ञे विधिवच्चदृष्टम् ॥ ४० ॥

युद्ध में जिसके मस्तक से रुधिर गिरकर मुँह में पड़ता हो तो वह उसके विधिवत् यज्ञ में सोमपान करने के तुल्य होता है ॥ ४० ॥

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः।
पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्व्याल्लभन्ति ते ॥ ४१ ॥

जो द्विजातिलोग किसी अनाथ मरे हुए ब्राह्मण को दाह करने के लिए उठा ले जाते हैं तो वे जितने पाँव (कदम) चलते हैं, उतना क्रम से उन्हें यज्ञ का फल होता जाता है ॥ ४१ ॥

न तेषामशुभं किञ्चित्पापं वा शुभकर्मणाम्।
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४२ ॥

उन शुभ काम करनेवालों को कोई अशुभ और पाप नहीं होता। जल में स्नान करने से उनकी शुद्धि भी उसी क्षण हो जाती है ॥ ४२ ॥

असगोत्रमबन्धुं च प्रेतीभूतं द्विजोत्तमम्।
वहित्वा दाहयित्वा च प्राणायामेन शुध्यति ॥ ४३ ॥

जो मरे हुये ब्राह्मण को अपना सगोत्र और बन्धु न होने पर भी उसे

ले जाकर दाह करता है वह एक प्राणायाम करने मात्र से शुद्ध हो जाता है॥ ४३॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति॥ ४४॥

अपनी इच्छा से यदि किसी जाति अथवा परजाति के मुर्दे के पीछे जाये तो वस्त्र समेत स्नान करके अग्नि का स्पर्श करे और उस दिन घी खाकर रहे तब शुद्ध होता है॥ ४४॥

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद् ब्राह्मणो योऽनुगच्छति।
एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति॥ ४५॥

जो ब्राह्मण अज्ञान से किसी मरे हुए क्षत्रिय के पीछे जाता है तो वह एक दिन-रात अशुद्ध रहता है और दूसरे दिन पञ्चगव्य पान करने से शुद्ध हो जाता है॥ ४५॥

शवं तद्वैश्यमज्ञानाद् ब्राह्मणो योऽनुगच्छति।
कृत्वा शौचं द्विरात्रं च प्राणायामान् षडाचरेत्॥ ४६॥

मरे हुए वैश्य के पीछे यदि अज्ञान से ब्राह्मण जावे तो दो दिन अशौच करके, छः प्राणायाम करे तब शुद्ध हो जाता है॥ ४६॥

प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥ ४७॥

जो अज्ञानी ब्राह्मण मरे हुए शूद्र के पीछे जाता है, वह तीन दिन तक अशुचि रहता है॥ ४७॥

त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति॥ ४८॥

तीन दिन बीतने पर किसी समुद्रगामिनी नदी में जाकर सौ प्राणायाम करे और घी भोजन करे तो शुद्ध होता है॥ ४८॥

विनिर्वर्त्य यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः।
द्विजैस्तदानुगन्तव्या एष धर्मः सनातनः॥ ४९॥

जब दाह और उदक क्रिया कर शूद्र लोग लौट आवें तब उनके पास ब्राह्मण प्रभृति जावें, यह सनातन धर्म है॥ ४९॥

तस्माद् द्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत्।
दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी॥ ५०॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे जननमरणसूतकादि-
शुद्धिर्नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इसलिये द्विज लोग मरे हुए शूद्र को न छूवें और न जलावें और देख लें तो भी सूर्य की ओर ताकने से शुद्ध होते हैं—यही रीति पुरातन है॥ ५०॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में जनन-मरण-सूतकादिशुद्धि
नामक तृतीय अध्याय समाप्त॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात्।
उद्बध्नीयात् स्त्री पुमान्वा गतिरेषा विधीयते॥ १॥

यदि कोई पुरुष अथवा स्त्री अपने मानकी हानि से, अत्यन्त क्रोध से, बड़े प्रेम से, और अति भय से आत्मवध करे तो उसकी यह गति होती है॥ १॥

पूयशोणितसम्पूर्णे त्वन्धे तमसि मज्जति।
षष्टिं वर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते॥ २॥

वह पीब और रक्त से भरे हुए अन्धतामिस्र नामक नरक में साठ हजार बरस तक पड़ा रहता है॥ २॥

नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत्।
वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा॥ ३॥

तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः।
गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम्॥ ४॥

उस प्रकार से मरने वाले का अशौच, उदकदान और दाह कर्म न करे तथा उसके लिये रुदन भी न करे। उनके ले जाने, दाह करने तथा बन्धन काटनेवालों की शुद्धि तप्तकृच्छ्र व्रत से होती है, ऐसा प्रजापति कहते हैं। गौओं से मारा हुआ, अपने से मरा हुआ, और जो ब्राह्मणों द्वारा मारा हुआ हो॥ ३-४॥

संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये।
अन्ये ये चानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये॥ ५॥
तप्तकृच्छ्रेण शुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम्।
अनडुत्सहितां गां च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम्॥ ६॥

उसे जो कोई ब्राह्मण छूए, उठाकर ले जाये, दाह करे, और उसके शव के पीछे चले अथवा गले का बन्धन काटे तो वे तप्तकृच्छ्र व्रत द्वारा शुद्ध होकर ब्राह्मण को भोजन करायें और वृषभ सहित गाय ब्राह्मण को दक्षिणा दें॥ ५-६॥

त्र्यहमुष्णं पिबेद्वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम्॥ ७॥

तप्तकृच्छ्र व्रत यों होता है—पहले तीन दिन उष्णजल पीकर रहे; उसके अनन्तर तीन दिन उष्ण दूध पीये; पुनः तीन दिन तप्त घी पीये; उसके बाद तीन दिन कुछ न खाये—ऐसे बारह दिन में यह व्रत होता है॥ ७॥

षट्पलं तु पिबेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिबेत्।
पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते॥ ८॥

[ऊपर जो उष्ण जल आदि पीने को कहा है उसकी तोल यह है कि] २४ तोले जल, १२ तोले दूध और ४ तोले घी पीना; तब तप्त-कृच्छ्र होता है॥ ८॥

यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः।
पञ्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा॥ ९॥

मासार्द्धं मासमेकं वा मासद्वयमथापि वा।
अब्दार्द्धमब्दमेकं वा तदूर्ध्वं चैव तत्समः॥ १०॥

जो ब्राह्मण पतितादिकों के साथ अनिच्छापूर्वक पाँच, दस अथवा बारह दिनों तक रहे या पन्द्रह दिनों तक, अथवा एक, दो या छः मास तक रहे या एक वर्ष तक रहे तो वक्ष्यमाण प्रायश्चित्त करे। यदि वर्ष दिन से अधिक साथ रहे तो उन्हीं के तुल्य हो जाता है॥ ९-१०॥

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत्।
तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्॥ ११॥

इन आठों प्रकार के संसर्ग का प्रायश्चित्त क्रम से यों जानना—त्रिरात्र, कृच्छ्र, कृच्छ्रसान्तपन॥ ११॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पञ्चमे मतः।
कुर्याच्चान्द्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैन्दवद्वयम्॥ १२॥

दशरात्र, पराक, चान्द्रायण तथा दो ऐन्दवव्रत॥ १२॥

शुध्यर्थमष्टमे चैव षण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत्।
पक्षसङ्ख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा॥ १३॥

और छः महीने तक कृच्छ्रव्रत करना पड़ता है और दक्षिणा भी इनमें क्रम से पहले में एक, दूसरे में दो सुवर्ण इसी भाँति एक सुवर्ण अधिक करके ब्राह्मण को दी जाती है॥ १३॥

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्त्तारं नोपसर्पति।
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः॥ १४॥

जो स्त्री ऋतुस्नाता हो और अपने पति के पास नहीं जाती वह मरकर नरक में जाती है और बारम्बार विधवा भी होती है॥ १४॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥ १५॥

जो पुरुष निकट रहकर भी अपनी ऋतुस्नाता स्त्री के पास नहीं जाता तो उसे बड़ी भारी भ्रूण हत्या होती है; इसमें कुछ सन्देह ही नहीं॥ १५॥

दरिद्रं व्याधितं [१]धूर्तं भर्तारं याऽवमन्यते।
सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः॥ १६॥

जो स्त्री अपने दरिद्र, रोगी अथवा धूर्त पति का भी अपमान करे तो वह मरकर बारम्बार कुत्ती और सूकरी होती है॥ १६॥

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।
आयुष्यं हरते भर्त्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्॥ १७॥

पति के जीते ही जो नारी उपवास करके व्रत करती है वह अपने पति की आयुष्य की हानि करती है और नरक प्राप्त करती है॥ १७॥

अपृष्ट्वा चैव भर्त्तारं या नारी कुरुते व्रतम्।
सर्वं तद्राक्षसान् गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत्॥ १८॥

जो स्त्री अपने पति से बिना पूछे ही व्रत करती है उसका सब फल राक्षसों को ही मिलता है—ऐसा मनु ने कहा है॥ १८॥

बान्धवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या।
गर्भपातं च या कुर्यान्न तां सम्भाषयेत् क्वचित्॥ १९॥

जो स्त्री अपने कुटुम्ब और जाति वालों के साथ दुर्व्यवहार करे और औषध प्रभृति के द्वारा गर्भपात करे उससे कभी नहीं बोलना चाहिये॥ १९॥

यत्पापं ब्रह्महत्यायां द्विगुणं गर्भपातने।
प्रायश्चित्तं न तस्याः स्यात्तस्यास्त्यागो विधीयते॥ २०॥

ब्रह्महत्या से दूना पाप गर्भपात कराने में होता है और उस स्त्री का प्रायश्चित्त भी नहीं हो सकता। इस हेतु ऐसी स्त्री का त्याग ही करना विहित है॥ २०॥

न कार्यमावसथ्येन नाग्निहोत्रेण वा पुनः।
स भवेत् कर्मचाण्डालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः॥ २१॥

जो मनुष्य धर्म से विमुख है उसके आवसथ्य (स्मार्ताग्नि) और अग्निहोत्र करने से क्या होता है? वह कर्म से चाण्डाल कहलाता है॥ २१॥

१. 'मूर्खं' इति पाठान्तरम्।

ओघ-वाताऽऽहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति।
क्षेत्री तल्लभते बीजं न बीजी भागमर्हति॥ २२॥

जल और वायु के वेग से यदि कोई बीज लुढ़क कर कहीं दूसरे के खेत में जाकर जमे तो उस खेत का स्वामी ही उस बीज को लेता है, न कि उस बीज के स्वामी को भाग मिलता है॥ २२॥

तद्वत्परस्त्रियाः पुत्रौ द्वौ स्मृतौ कुण्ड-गोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यात् मृते भर्तरि गोलकः॥ २३॥

इस भाँति पर-स्त्री को भी कुण्ड और गोलक दो पुत्र होते हैं। भर्ता जीता रहे उस समय उपपति से जो पुत्र उत्पन्न हो उसे 'कुण्ड' और पति के मरने पर जो उपजे उसे 'गोलक' कहते हैं॥ २३॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः।
दद्यान्माता पिता वाऽपि स पुत्रो दत्तको भवेत्॥ २४॥

(१) औरस (अपनी सजातीय भार्या में उत्पन्न), (२) क्षेत्रज, (३) दत्तक और (४) कृत्रिम—इतने प्रकार के पुत्र होते हैं। जिसे पिता या माता किसी को दे वही दत्तक पुत्र होता है॥ २४॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते।
सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः॥ २५॥

परिवित्ति (जिसके छोटे भाई ने पहले अपना ब्याह कर लिया हो), परिवेत्ता (उसी परिवित्ति का वह छोटा भाई) और जिस कन्या को परिवेत्ता ब्याहे तथा उस कन्या का दाता और उसका ब्याह कराने वाला ब्राह्मण—ये पाँचों नरक में जाते हैं॥ २५॥

द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चान्द्रायणं चरेत्॥ २६॥

परिवित्ति को दो कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। कन्या को एक कृच्छ्र, दाता को दो कृच्छ्रव्रत करना होता है; और ब्याह कराने वाला चान्द्रायण व्रत करे॥ २६॥

कुब्ज-वामन-षण्ढेषु गद्गदेषु जडेषु च।

जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिविन्दतः॥ २७॥

जिसका जेठा भाई कुबड़ा, बौना, नपुंसक, तोतला, अज्ञानी [जड़], जन्मान्ध, बधिर अथवा गूँगा हो तो उसके छोटे भाई को पहले ब्याह करने से दोष नहीं होता॥ २७॥

पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा।

दाराऽग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने॥ २८॥

चचेरे और सौतेले भाई को तथा दत्तकादि परनारी सुतों को बड़े भाई से पहले ही ब्याह और अग्निहोत्र करने में दोष नहीं है॥ २८॥

ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत्।

अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा॥ २९॥

यदि बड़ा भाई ब्याह या अग्निहोत्र करने की इच्छा न रखता हो और उसकी आज्ञा लेकर छोटा भाई अग्निहोत्र आदि कर ले तो शङ्ख का वचन है कि उसे दोष नहीं है॥ २९॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।

पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥ ३०॥

जिसका पति नष्ट (अर्थात् विदेश जाने आदि से जिसका कहीं पता ही न लगे), मृत, प्रव्रजित (सन्यासी), नपुंसक और पतित हो तो इन पाँच प्रकार की विपत्तियों में उस स्त्री को अन्य पति विहित है॥ ३०॥

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता।

सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः॥ ३१॥

भर्त्ता के मरने पर जो स्त्री ब्रह्मचर्य व्रत करती हुई अपने दिन बिताती है वह मरकर ब्रह्मचारियों की भाँति स्वर्ग में जाती है॥ ३१॥

तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च यानि लोमानि मानुषे।

तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्त्तारं याऽनुगच्छति॥ ३२॥

जो स्त्री अपने पति के मरने पर उसी के साथ प्राण त्याग करती है तो

वह साढ़े तीन करोड़, अर्थात् जितने रोंगटे देह में हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग में वास करती है॥ ३२॥

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात्।
एवं स्त्रीपतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते॥ ३३॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे उद्बन्धनादिमृतशुद्धिर्नाम
चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

जिस प्रकार सर्प पकड़ने वाले बिल के अन्दर से भी अपने करतब के बल से सर्प को बाहर खींच लेते हैं उसी भाँति नीच स्थल में भी पड़े हुए अपने पति को सती स्त्री बाहर निकाल कर उसी के साथ विहरती है॥ ३३॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में उद्बन्धनादिमृतशुद्धि नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

वृक-श्वान-शृगालाद्यैर्दष्टो यस्तु द्विजोत्तमः।
स्नात्वा जपेत्स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम्॥ १॥

जिस ब्राह्मण को वृक (भेड़िया), कुत्ता और गीदड़ प्रभृति ने काट खाया हो तो वह स्नान करके वेद की माता गायत्री का जप करे॥ १॥

गवां शृङ्गोदकैः स्नानं महानद्योस्तु सङ्गमे।
समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत्॥ २॥

अथवा कुत्ते का काटा हुआ गाय के शृंग के जल से या दो महानदों के संगम में स्नान करे, किं वा समुद्र का दर्शन करे तो भी शुद्ध हो जाता है॥२॥

वेद-विद्या-व्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजो यदि।
स हिरण्योदकैः स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति॥ ३॥

यदि किसी ऐसे ब्राह्मण को कुत्ता काटे जो वेद और चौदहों विद्याओं को जानता हो तथा अच्छे-अच्छे व्रत किये हो तो वह सोना धोकर, उस पानी से नहा ले और घी खा ले। इतने ही से शुद्ध हो जाता है॥ ३॥

सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिरात्रमुपावसेत्।
घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत्॥ ४॥

जो किसी व्रत को कर रहा हो उस बीच में उसे कुत्ता काट ले तो वह तीन दिन उपवास करे और घी तथा कुशों का जल पीये। अनन्तर अपने उस व्रत को जो शेष रहा हो पूरा करे॥ ४॥

अव्रतः सव्रतो वाऽपि शुना दष्टो भवेद् द्विजः।
प्रणिपत्य भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षितः॥ ५॥

चाहे व्रतवाला हो अथवा व्रत करने वाला हो, कैसे भी द्विज को यदि कुत्ते ने काट लिया हो तो वह ब्राह्मणों को दण्डवत् करे और ब्राह्मण लोग उसे आँखभर देख लें तो वह शुद्ध हो जाता है॥ ५॥

शुना घ्रातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च।
अद्भिः प्रक्षालनाच्छुद्धिरग्निना चोपचूलनम्॥ ६॥

जिस वस्तु को कुत्ते ने सूँघ, चाट, अथवा नखों से खसोट लिया हो उसको जल में धोकर आग में सेंक दे तो वह शुद्ध हो जाती है॥ ६॥

शुना तु ब्राह्मणी दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा।
उदितं सोमनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत्॥ ७॥

जिस ब्राह्मणी को कुत्ते, गीदड़ अथवा भेड़िये ने काट लिया हो तो वह उगे हुए सोम (अर्थात् चन्द्रमा) या नक्षत्र (तारों) का दर्शन करने से उसी क्षण शुद्ध हो जाती है॥ ७॥

कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन।
यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं वाऽवलोकयेत्॥ ८॥

कृष्णपक्ष हो और चन्द्रमा न दीख पड़े तो जिस दिशा में चन्द्रमा जाते हों (अर्थात् सम्भावना हो) उस दिशा को देख ले॥ ८॥

असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः।
वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत्॥ ९॥

किसी ऐसे गाँव में जब ब्राह्मण को कुत्ता काटे जहाँ कोई दूसरा ब्राह्मण न हो तो बैल की प्रदक्षिणा कर स्नान कर डाले तो वह तत्काल शुद्ध हो जाता है॥ ९॥

चण्डालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि।
आहिताग्निर्मृतो विप्रो विषेणात्महतो यदि॥ १०॥
दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम्।
स्पृष्ट्वा वोढ्वा च दग्ध्वा च सपिण्डेषु च सर्वथा॥ ११॥
प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनात्।
दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद्द्विजः॥ १२॥

यदि कोई अग्निहोत्री ब्राह्मण चाण्डाल (ब्राह्मणी में शूद्र से जन्मा हुआ), श्वपाक (क्षत्राणी में शूद्र से उत्पन्न), गाय अथवा ब्राह्मण द्वारा मारा गया हो किं वा विष खा कर आप ही मर गया हो तो उसे उसके सपिण्डों में से कोई ब्राह्मण लौकिक अग्नि में बिना मन्त्र पढ़े ही जला देवे तो स्पर्श, वहन, और दाह करने वाला सपिण्ड ब्राह्मणों की आज्ञा से प्राजापत्य व्रत करे। दाह करके पुनः वह द्विज उसकी हड्डियाँ लेकर दूध से धोये॥ १०-१२॥

स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेतत्पुनर्दहेत्।
आहिताग्निर्द्विजः कश्चित्प्रवसन्कालचोदितः॥ १३॥
देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याग्निर्वर्तते गृहे।
[1]प्रेताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतामृषिपुङ्गवाः॥ १४॥

और अपनी अग्नि तथा अपने मन्त्र से उन्हें पुनः अन्यत्र जलाये। यदि कोई अग्निहोत्री द्विज परदेश में जाकर कालवश से मर जाये और उसकी अग्नि उसके घर में हो तो उस मुर्दे और उसकी अग्नि का जो संस्कार है हे श्रेष्ठ मुनियों! आप लोग सुनें॥ १३-१४॥

---

१. 'श्रौताग्निहोत्रसंस्कारः' इति पाठान्तरम्।

कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम्।
षट्शतानि शतं चैव पलाशानां च वृन्ततः॥ १५॥
चत्वारिंशच्छिरे दद्याच्छतं कण्ठे तु विन्यसेत्।
बाहुभ्यां दशकं दद्यादङ्गुलीषु दशैव तु॥ १६॥
शतं तु जघने दद्याद् द्विशतं तूदरे तथा।
दद्यादष्टौ वृषणयोः पञ्च मेढ्रे तु विन्यसेत्॥ १७॥
एकविंशतिमूरुभ्यां द्विशतं जानु-जङ्घयोः।
पादाङ्गुलीषु षड् दद्यात् यज्ञपात्रं ततो न्यसेत्॥ १८॥

काले मृग का चर्म फैलाकर उस पर कुशों का पुरुष या स्वरूप बनाना। कुश न मिले तो पलाश के सात सौ पत्तों में से चालीस पत्ते शिर में देना, सौ पत्ते गले में, दोनों बाहों में दस, अँगुलियों में दस जघन में सौ, दो सौ पेट में, दोनों अण्डों में आठ, लिङ्ग में पाँच, दोनों ऊरुओं में इक्कीस, जानु और जंघाओं में दौ सौ, और पाँव के अँगूठों में छः पत्ते देवे। तब यज्ञ के पात्रों को रक्खे॥ १५-१८॥

शमीं शिश्ने विनिःक्षिप्य अरणीं [१]मुष्कयोरपि।
जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत्॥ १९॥
कर्णे चोलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुशलं न्यसेत्।
उरसि क्षिप्य दृषदं तण्डुलाऽऽज्य-तिलान्मुखे॥ २०॥
श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं तु चक्षुषोः।
कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं क्षिपेत्॥ २१॥
अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र विन्यसेत्।
'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहे' त्येकाहुतिं सकृत्॥ २२॥

शमी को लिङ्ग पर, अरणी को अण्डकोश पर, जुहू को दाहिने हाथ पर, उपभृत को बाएँ हाथ पर, कान पर उलूखल, पीठ पर मूसल, छाती पर दृषत् तथा चावल, घी और तिलों को मुँह में दे कानों पर प्रोक्षणीपात्र दे, आँखों पर आज्यस्थाली तथा कान, आँख, मुँह और नाक में सोने का टुकड़ा

१. 'वृषणे तथा' इति पाठान्तरम्।

दे तथा सारा अग्निहोत्र का उपकरण वहाँ रखकर, 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा'— ऐसा कहकर एक ही बार आहुति दे॥ १९-२२॥

दद्यात्पुत्रोऽथवा भ्राताऽप्यन्यो वाऽपि च बान्धवः।
यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्यं विचक्षणैः॥ २३॥

पुत्र अथवा भ्राता दे कोई दूसरा बान्धव हो तो वह भी दे, अनन्तर जैसा दाह का संस्कार होता है वैसा विज्ञ जन करें॥ २३॥

ईदृशं तु विधिं कुर्याद् ब्रह्मलोके गतिर्ध्रुवम्।
दहन्ति ये द्विजास्तं तु ते यान्ति परमां गतिम्॥ २४॥

इस प्रकार की विधि करने से ब्रह्मलोक में गति होती है। जो ब्राह्मण उसका दाह करते हैं वे भी परमगति को पाते हैं॥ २४॥

अन्यथा कुर्वते कर्म त्वात्मबुद्ध्या प्रचोदिताः।
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरकेऽशुचौ॥ २५॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे स्नानादिशुद्धिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

जो कोई अपनी बुद्धि की कल्पना से अन्यथा कर्म करते हैं वे अल्पायु होते हैं और अति अपवित्र नरक में पड़ते हैं॥ २५॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में स्नानादिशुद्धि नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम्।
पराशरेण पूर्वोक्तां मन्वर्थेऽपि च विस्तृताम्॥ १॥

अब जीवों की हत्या करने पर जिस प्रायश्चित्त से मनुष्य शुद्ध होता है

उसे मैं, जैसा पराशर ने पहले कह रखा है और मनु-वाक्यों में भी विस्तार सहित है—कहता हूँ॥ १॥

क्रौञ्च-सारस-हंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम्।
जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः॥ २॥

क्रौंच (कूंज), सारस, हंस, चकई-चकवा, कुक्कुट (मुर्गा) और जालपाद (जिनके पाद एक चर्म से जुड़े होते हैं; यथा—बत्तख, मुर्गी आदि) तथा शरभ को मारे तो एक दिन-रात उपवास करने से शुद्ध होता है॥ २॥

बलाका-टिट्टिभौ वापि शुक-पारावतावपि।
अटीनबकघाती च शुध्यते नक्तभोजनात्॥ ३॥

बलाका, टिट्टिभ, तोता, पारावत, अटीन और बक को मारे तो केवल रात में भोजन करने से शुद्ध होता है॥ ३॥

वृक-काक-कपोतानां सारी-तित्तिरिघातकः।
अन्तर्जल उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुध्यति॥ ४॥

वृक (भेडिया), काक, कबूतर, मैना और तित्तिर को मारे तो साँझ, सबेरे जल में प्राणायाम करने से शुद्ध होता है॥ ४॥

गृध्र-श्येन-शशादीनामुलूकस्य च घातकः।
अपक्काशी दिनं तिष्ठेत् त्रिकालं मारुताशनः॥ ५॥

गिद्ध, बाज, खरगोश और उल्लू को मारे तो पहले दिन बिना पकी वस्तु खाकर रहे; दूसरे दिन तीसरे पहर भोजन करे; तीसरे दिन कुछ भी न खावे तो शुद्ध होता है॥ ५॥

वल्गुली-टिट्टिभानां च कोकिला-खञ्जरीटके।
लाविका-रक्तपक्षेषु शुध्यते नक्तभोजनात्॥ ६॥

वल्गुली, टिट्िभ, कोयल, खञ्जरीट, लाविका (बटेर) और जिनके पर लाल हो उन्हें मारे तो रात को भोजन करने से शुद्ध होता है॥ ६॥

कारण्डव-चकोराणां पिङ्गला-कुररस्य च।
भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं सम्पूज्य शुध्यति॥ ७॥

कारण्डव, चकोर, पिङ्गला, कुरर और भारद्वाजादि पक्षियों को मारे तो शिवकी पूजा करने से शुद्ध होता है॥ ७॥

भेरुण्ड-चाष-भासांश्च पारावत-कपिञ्जलान्।
पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम्॥ ८॥

भेरुण्ड, चाष (नीलकण्ठ या गरुड़), भास, पारावत और कपिञ्जल प्रभृति सब पक्षियों के मारने में एक दिन-रात भोजन न करे॥ ८॥

हत्वा मूषक-मार्जार-सर्पाऽजगर-डुण्डुभान्।
कृसरं भोजयेद्विप्रान् लौहदण्डं च दक्षिणाम्॥ ९॥

चूहा, बिल्ली, सर्प, अजगर और डुण्डुभ (पानी का सर्प) मारे तो कृसरान्न (तिल-मूँग की खिचड़ी) ब्राह्मणों को खिलावे और लोहे का दण्ड दक्षिणा में देवे॥ ९॥

शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्यकम्।
वृन्ताकफलभक्षी चाप्यहोरात्रेण शुध्यति॥ १०॥

शिशुमार (सूइस), गोधा (गोह), कछुआ और शल्लक (शाही) को मारे तो एक उपवास करे; अथवा वृन्ताकफल खाकर एक दिन-रात रहे। इतने ही से शुद्ध होता है॥ १०॥

वृक-जम्बुक-ऋक्षाणां तरक्षूणां च घातने।
तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम्॥ ११॥

वृक, जम्बुक, रीछ, तरक्षु (तरख) को मारे तो एक प्रस्थ तिल ब्राह्मण को दे और तीन दिन उपवास करे॥ ११॥

गजस्य च तुरङ्गस्य महिषोष्ट्रनिपातने।
प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसन्ध्यमवगाहनम्॥ १२॥

हाथी, घोड़ा, भैंसा और ऊँट के मारने से एक दिन-रात व्रत करे और तीनों सन्ध्याओं में (प्रातः, सायं, मध्याह्न) स्नान करे॥ १२॥

कुरङ्गं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयन्।
शुध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च॥ १३॥

हरिण, वानर, सिंह, चीता और बाघ को मारे तो तीन दिन का व्रत करे; और ब्राह्मणों को तुष्ट करके भोजन करावे॥ १३॥

मृग-रोहिद्वराहाणामवेर्बस्तस्य घातकः।
अकालकृष्टमश्नीयादहोरात्रमुपोष्य सः॥ १४॥

मृग, रोही, शूकर, भेंड़ और बकरे को मार कर एक दिन उपवास कर जब दूसरे दिन वह अन्न जो बिना जुती हुई धरती में उपजा हो खाये तब शुद्ध होता है॥ १४॥

एवं चतुष्पदानां च सर्वेषां वनचारिणाम्।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम्॥ १५॥

इसी भाँति सम्पूर्ण प्रकार के और जंगली चारपायों के मारने पर एक दिन-रात उपवास करे और 'जातवेदसे सुनुवाम सोमम्' इस मन्त्र को जपता रहे॥ १५॥

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत्।
प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादश दक्षिणा॥ १६॥

चितेरे, रसोइये, शूद्र और स्त्री को जो मारे वह दो प्राजापत्य व्रत करे और दस गौ एक बैल दक्षिणा दे तब शुद्ध होये॥ १६॥

वैश्यं वा क्षत्रियं वाऽपि निर्दोषं योऽभिघातयेत्।
[1]सोऽतिकृच्छ्रद्वयं कुर्याद् गोविंशद्दक्षिणां ददेत्॥ १७॥

जो निर्दोष क्षत्रिय अथवा वैश्य को मारे वह दो अतिकृच्छ्र व्रत करे और बीस गाय दक्षिणा दे॥ १७॥

वैश्यं शूद्रं क्रियाऽऽसक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम्।
हत्वा चान्द्रायणं तस्य त्रिंशद्गाश्चैव दक्षिणा॥ १८॥

यदि यज्ञ आदि क्रिया अथवा जप-पूजा में बैठे हुए वैश्य अथवा शूद्र को मारे किंवा किसी अपने धर्म से च्युत ब्राह्मण को मारे तो चान्द्रायण व्रत करके तीस गौ दक्षिणा देवै॥ १८॥

चाण्डालं हतवान् कश्चिद् ब्राह्मणो यदि कञ्चन।
प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां ददेत्॥ १९॥

यदि कोई ब्राह्मण चाण्डाल को मारे तो प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करे और दो गाय दक्षिणा दे॥ १९॥

क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण वा।
चाण्डालस्य वधे प्राप्ते कृच्छ्रार्धेन विशुध्यति॥ २०॥

---

१. 'सोऽपि' इति पाठान्तरम्।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अथवा अन्य भी कोई यदि चाण्डाल को मारे तो आधा कृच्छ्र करने से शुद्ध होता है॥ २०॥

चौराः श्वपाकचाण्डाला विप्रेणाभिहता यदि।
अहोरात्रोषितः स्नात्वा पञ्चगव्येन शुध्यति॥ २१॥

यदि चोरी करनेवाले श्वपाक अथवा चाण्डाल को ब्राह्मण मारे तो एक दिन रात उपवास करके पञ्चगव्य प्राशन करे॥ २१॥

श्वपाकं वाऽपि चाण्डालं विप्रः सम्भाषते यदि।
द्विजसम्भाषणं कुर्यात्सावित्रीं च सकृज्जपेत्॥ २२॥

श्वपाक अथवा चाण्डाल से यदि ब्राह्मण बातचीत करे तो अन्य ब्राह्मण से बोलकर एक बार गायत्री जपे तब शुद्ध होता है॥ २२॥

चाण्डालैः सह सुप्ते तु त्रिरात्रमुपवासयेत्।
चण्डालैकपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः॥ २३॥

चाण्डाल के साथ सोने वाले को तीन दिन उपवास कराना और चाण्डाल के साथ राह में चला हो तो गायत्री स्मरण करने से शुद्ध होता है॥ २३॥

चाण्डालदर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत्।
चाण्डालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत्॥ २४॥

चाण्डाल को देखे तो झटपट सूर्य की ओर ताक दे। चाण्डाल को छू लेवे तो स-चैल (कपड़े समेत) स्नान कर डाले॥ २४॥

चाण्डालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रजः।
अज्ञानाच्चैकभक्तेन त्वहोरात्रेण शुध्यति॥ २५॥

यदि ब्राह्मण ने बिना जाने चाण्डाल की खुदवाई हुई वापी या कूप आदि से जल पी लिया हो तो एक भक्त करे और जानबूझकर नहाया वा पानी पिया हो तो एक उपवास से शुद्ध होता है॥ २५॥

चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम्।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात्॥ २६॥

यदि चाण्डाल ने अपना बर्तन पानी निकालने के लिये कूप में डाला

हो और उस कूप के जल को पीये तो तीन दिन तक गोमूत्र में यावक पकाकर खाने से वह व्यक्ति शुद्ध होता है॥ २६॥

चाण्डालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिबति द्विजः।
तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत्॥ २७॥

यदि चाण्डाल के भाण्ड का जल कोई पी ले और उसी क्षण उसे वमन कर दे तो वह प्राजापत्य व्रत करे॥ २७॥

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति।
प्राजापत्यं तदावश्यं कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्॥ २८॥

कदाचित् वमन न किया और वह जल उनके पेट में ही पच गया तो कृच्छ्र सान्तपन व्रत करे॥ २८॥

चरेत्सान्तपनं विप्रः [1]प्राजापत्यमनन्तरः।
तदर्द्धं तु चरेद्वैश्यः पादं [2]शूद्रस्य दापयेत्॥ २९॥

ब्राह्मण हो ता सान्तपन करे। क्षत्रिय प्राजापत्य करे। वैश्य उसका आधा और शूद्र प्राजापत्य का चौथाई व्रत करे॥ २९॥

भाण्डस्थमन्त्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत्।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः॥ ३०॥
ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः।
शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः॥ ३१॥

यदि अन्त्यज (चाण्डाल आदि) के बर्तन का जल, दही वा दूध चारों वर्ण में से कोई प्रमाद से पी ले तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की शुद्धि ब्रह्मकूर्च व्रत करने से होती है और शूद्र एक उपवास तथा अपनी शक्ति भर दान करने से शुद्ध होता है॥ ३०-३१॥

भुङ्क्तेऽज्ञानाद् द्विजश्रेष्ठश्चाण्डालान्नं कथञ्चन।
गोमूत्रयावकाहाराद्दशरात्रेण शुध्यति॥ ३२॥

यदि किसी भाँति बिना जाने चाण्डाल का अन्न ब्राह्मण खा लेवे तो

---

१. 'प्राजापत्यं तु क्षत्रियम्' इति पाठान्तरम्।
२. 'शूद्रस्तदाचरेत्' इति पाठान्तरम्।

गाय के मूत्र में यावक पकाकर दस दिन खाने से शुद्ध होता है, जान बूझकर खावे तो चान्द्रायण करे॥ ३२॥

एकैकं ग्रासमश्नीयाद् गोमूत्रयावकस्य च।
दशाहं नियमस्थस्य व्रतं तत्र विनिर्दिशेत्॥ ३३॥

इस व्रत में गौमूत्र में पके हुए यावक को एक ही ग्रास प्रतिदिन खाना होता है; और दस दिन नियम से रहना पड़ता है॥। ३३॥

अविज्ञातस्तु चाण्डालो यत्र वेश्मनि तिष्ठति।
विज्ञाते तूपसन्न्यस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम्॥ ३४॥

जिसके घर में बिना जाने चाण्डाल रहता हो तो जब उसे जाने तब झट दूर करे और ब्राह्मणों के उपदेश से प्रायश्चित्त करे॥ ३४॥

मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान् गायन्तो वेदपारगाः।
पतन्तमुद्धरेयुस्ते धर्मज्ञाः पापसङ्कटात्॥ ३५॥

वेदपारङ्गत ब्राह्मण उस पतित होते मनुष्य का उद्धार ऐसे पाप-सङ्कट से, पराशर आदि मुनियों के कहे हुए धर्मों को बतला कर करें॥३५॥

दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम्।
भुञ्जीत सह [१]भृत्यैश्च त्रिसन्ध्यमवगाहनम्॥ ३६॥

गाय के मूत्र में पके हुए यावक को दही, घी और दूध के साथ तीन दिन अपने भृत्यों समेत भोजन करे और तीनों सन्ध्याओं में स्नान करे॥

त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहं भुञ्जीत सर्पिषा।
त्र्यहं क्षीरेण भुञ्जीत एकैकेन दिनत्रयम्॥ ३७॥

तीन दिन दही के साथ, तीन दिन घी के और तीन दिन दूध के साथ खाये और अन्त में पुनः एक-एक दिन इन प्रत्येक के साथ खाये तो बारह दिन में यह व्रत होता है॥ ३७॥

भावदुष्टं न भुञ्जीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम्।
दधिक्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु॥ ३८॥

अपवित्र बुद्धि जिसके प्रति हो जावे उसे न खाये, जूठा न खाये और

१. 'सर्वैश्च' इति पाठान्तरम्।

कृमि से दूषित को भी न खाये। दधि और दूध तो तीन-तीन पल (अर्थात् १२ तोले) और घी एक पल (४ तोले) ले॥ ३८॥

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः ताम्र-कांस्ययोः।
जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृण्मयम्॥ ३९॥

काँसे और ताँबे की शुद्धि भस्म (राख) से होती है, वस्त्रों की जल से, और मिट्टी के बर्तन को त्याग देने से शुद्धि होती है॥ ३९॥

कुसुम्भ-गुड-कार्पास-लवणं तैल-सर्पिषी।
द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद्वेश्मनि पावकम्॥ ४०॥

जिस घर में चाण्डाल ने निवास किया हो उस घर में से कुसुम्भ, गुड़, कपास, लवण, तैल, घी और दूसरे अन्नों को भी घर के द्वार पर निकाल ले और फिर उस घर में आग लगा दे॥ ४०॥

एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद् ब्राह्मणतर्पणम्।
विंशतिर्गा वृषं चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्॥ ४१॥

इस भाँति शुद्ध होकर बाद में ब्राह्मण-भोजन करावे तथा बीस गाय और एक बैल ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे॥ ४१॥

पुनर्लेपन-खातेन होम-जप्येन शुध्यति।
आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते॥ ४२॥

पुनः उस गृह की भूमि को खुरच कर लीपने से और होम, जाप से शुद्ध कर तथा ब्राह्मणों को उस पर बैठाने से भी भूमिका दोष नहीं रहता। (यहाँ तक घर में चाण्डाल के रहने का प्रायश्चित ९ श्लोकों में कह दिया है)॥ ४२॥

चाण्डालैः सह सम्पर्कं मासं मासार्द्धमेव वा।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति॥ ४३॥

यदि चाण्डालादिकों के साथ एक या आधे महीने तक संसर्ग रहा हो तो गोमूत्र में पके हुए यावक को १५ दिन खाने से वह शुद्ध होता है॥ ४३॥

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी।
चातुर्वर्ण्यस्य च गृहे त्वविज्ञाता तु तिष्ठति॥ ४४॥

ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव हि।
गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत्॥ ४५॥

धोबिन, चमारिन, व्याधस्त्री, और वेणुजीविनी, (धरकारिन)—ये चारों वर्णों में से किसी के घर में बिना जाने रही हों तो जब जाने तब पहले कहे हुए का आधा प्रायश्चित्त करे, गृहदाह न कर और सब करे॥ ४४-४५॥

गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेच्चाण्डालो यदि कस्यचित्।
तमागाराद्विनिर्वास्य मृद्भाण्डं तु विसर्जयेत्॥ ४६॥

यदि किसी के घर में चाण्डाल चला जाय तो उसे घर के बाहर निकालकर मिट्टी के बर्तनों को फेंक दे॥ ४६॥

रसपूर्णं तु मृद्भाण्डं न त्यजेत्तु कदाचन।
गोमयेन तु सम्मिश्रैर्जलैः प्रोक्षेद्गृहं तथा॥ ४७॥

जिन मिट्टी के बर्तनों में घी, तेल आदि रस भरा हो उन्हें न त्यागे और गौ के गोबर से घर लिपवा दे॥ ४७॥

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूय-शोणितसम्भवे।
कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत्?॥ ४८॥

यदि ब्राह्मण को व्रण होकर रक्त पीब बहता हो और उसमें कृमि पड़ जाये तो उसका प्रायश्चित्त कैसे करना चाहिये?॥ ४८॥

गवां मूत्र-पुरीषेण दध्ना क्षीरेण सर्पिषा।
त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत्॥ ४९॥

तीन दिन तक पञ्चगव्य से स्नान कर पञ्चगव्यही खाये तो कृमिदोष से शुद्धि होती है॥ ४९॥

क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य पञ्च [१]माषान्प्रदाय तु।
गोदक्षिणां तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत्॥ ५०॥

क्षत्रिय हो तो उसे पाँच माशे सोना भी दान देना होता है, और वैश्य को एक उपवास करके एक गाय देनी होती है॥ ५०॥

शूद्राणां नोपवासः स्यात् शूद्रो दानेन शुध्यति।
अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः॥ ५१॥

१. 'प्रदापयेत्' इति पाठान्तरम्।

ब्राह्मण लोग 'अच्छिद्रमस्तु' इस वाक्य को जब कहें तो शूद्रों को उपवास की आवश्यकता नहीं; वे दानमात्र से ही शुद्ध होते हैं॥ ५१॥

प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलं हि तत्।
जपच्छिद्रं तपच्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि॥ ५२॥
सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम्।
व्याधिव्यसनिनिश्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा॥ ५३॥

प्रणाम करके माथे चढ़ाना; उसका फल अग्निष्टोमयज्ञ के तुल्य होता है। जप, तप और यज्ञ में भी जो छिद्र (न्यूनता) हो वह सब ब्राह्मणों के वाक्य से परिपूर्ण हो जाता है। यदि कोई व्याधि-ग्रस्त हो, पितृसेवा आदि व्यसन में पड़ा हो, थका हो, दुर्भिक्ष में और राजोपद्रव में पड़ा हो तो॥ ५२-५३॥

उपवासो व्रतं होमो द्विजसम्पादितानि वै।
अथवा ब्राह्मणास्तुष्टाः सर्वे कुर्वन्त्यनुग्रहम्॥ ५४॥

उपवास, व्रत, होम आदि ब्राह्मण द्वारा करावे अथवा ब्राह्मण लोग सन्तुष्ट होकर अनुग्रह करें कि 'तू शुद्ध हुआ' तो भी शुद्ध होता है॥ ५४॥

सर्वान् कामानवाप्नोति द्विजसम्पादितैरिह।
दुर्बलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथा वै बाल-वृद्धयोः॥ ५५॥

ब्राह्मण द्वारा व्रतादि सम्पादन करने से वहाँ पर सब कामना पूरी होती है; और जो दुर्बल, बालक और वृद्ध हों उन पर ब्राह्मणों को (परिषत् को) अनुग्रह करना चाहिये॥ ५५॥

अतोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः।
स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा॥ ५६॥

इनके बिना दोष होता है; इससे औरों में अनुग्रह करना मना है। यदि स्नेह, लोभ, भय अथवा अज्ञान से औरों पर अनुग्रह करें तो॥ ५६॥

कुर्वत्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति।
शरीरस्याऽत्यये प्राप्ते वदन्ति नियमं तु ये॥ ५७॥

वह पाप उन्हीं ब्राह्मणों को लग जाता है। जिसके शरीर नाश हो जाने की दशा हो उसे जो नियम व्रत उपदेश करें॥ ५७॥

महत्कार्योपरोधेन न स्वस्थस्य कदाचन।
स्वस्थस्य मूढा कुर्वन्ति वदन्ति नियमं च ये॥ ५८॥

अथवा किसी बड़े कर्म में लगे हुए को उपदेश करें तथा स्वस्थ मनुष्य को कदाचित् न करें और जो लोग मूर्खता से स्वस्थ के बदले आप ही नियम व्रत करें॥ ५८॥

ते तस्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ।
स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते॥ ५९॥

ये सब उसके विघ्न करने वाले हैं और अति अशुचि नरक में पड़ते हैं। और जो कोई ब्राह्मणों का अपमान कर उनसे बिना पूछे आप ही व्रत कर ले तो॥ ५९॥

वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते।
स एव नियमो ग्राह्यो यमेकोऽपि वदेद् द्विजः॥ ६०॥

उसका उपवास वृथा होता है; उसे पुण्य नहीं मिलता। उसी नियम को करना जिसे एक भी ब्राह्मण बत्तला देवे॥ ६०॥

कुर्याद्वाक्यं द्विजानां तु ह्यन्यथा भ्रूणहा भवेत्।
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः॥ ६१॥

ब्राह्मणों का वाक्य करे नहीं तो भ्रूणहा (गर्भ का हत्यारा) होता है। ब्राह्मण जङ्गम तीर्थ हैं और साधुजन भी तीर्थ हैं॥ ६१॥

तेषां वाक्योदकेनैव शुध्यन्ति मलिना जनाः।
ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः॥ ६२॥

उनके वचन रूपी जल से मलिन जन शुद्ध हो जाते हैं। जिन बातों को ब्राह्मण कह देते हैं, देवता भी उन्हें मानते हैं॥ ६२॥

सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा।
उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः॥ ६३॥
विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पूर्णं तस्य तत्फलम्।
अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिका-केशदूषिते॥ ६४॥
तदन्तरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत्।
भुञ्जानश्चैव यो विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत्॥ ६५॥

ब्राह्मण सर्वदेवमय है; उसका वचन अन्यथा नहीं। उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ, जप और तप जिसको ब्राह्मणों ने सम्पन्न किया उसे उसका सारा फल होता है। अन्न आदि वस्तु में यदि कीट पड़े अथवा मक्खी या केश ही पड़ जावे तो उसके मध्य (उसमें) जल और भस्म छिड़कने से शुद्ध होता है। जो ब्राह्मण भोजन करते समय हाथ से अपना पाँव छू ले॥ ६३-६५॥

स्वमुच्छिष्टमसौ भुंक्ते यो भुंक्ते भुक्तभाजने।
पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्यङ्के संस्थितोऽपि वा॥ ६६॥

वह उच्छिष्ट भोजनका प्रत्यवाय पाता है। भुक्तपात्र में भोजन से भी यही दोष है। पादुका पर और खटिया आदि पर बैठ कर भोजन न करे॥६६॥

श्वानचाण्डालदृष्टौ च भोजनं परिवर्जयेत्।
यदन्नं प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च॥ ६७॥

कुत्ते और चाण्डाल के सामने भोजन न करें। भोजन में जो अन्न प्रतिषिद्ध हैं और जिस भाँति अन्नशुद्धि होती है॥ ६७॥

यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि वः।
शृतं द्रोणाढकस्यान्नं काक-श्वानोपघातितम्॥ ६८॥

ये बातें जिस प्रकार पराशर मुनि ने कही है मैं भी आप लोगों से उसी ढंग से कहता हूँ। द्रोणाढ़क भर पके हुए अन्न को काक अथवा कुत्ता स्पर्श कर दे॥ ६८॥

'केनेदं शुध्यते?' चेति ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्।
काक-श्वानावलीढं तु द्रोणान्नं न परित्यजेत्॥ ६९॥

तो 'वह किस भाँति शुद्ध होगा?' ऐसा ब्राह्मणों से पूछे और काक वा कुत्ते आदि का जूठा किया हुआ द्रोणप्रमाण अन्न त्याग न करे॥ ६९॥

वेद-वेदाङ्गविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ।
प्रस्था द्वात्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः॥ ७०॥

वेद वेदाङ्ग जानने वाले और धर्मशास्त्र का पालन करने वाले ब्राह्मणों ने ३२ प्रस्थों का एक द्रोण और दो प्रस्थों का एक आढक कहा है॥ ७०॥

ततो द्रोणाऽऽढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः।
काक-श्वानावलीढं तु गवाघ्रातं खरेण वा॥ ७१॥

इसी प्रमाण से द्रोणाढक अन्न श्रुति-स्मृति-वेत्ताओं से अत्याज्य कहा है। जिस अन्न को काक और कुत्ते ने जूठा कर दिया हो अथवा गाय या गधे ने सूँघ लिया हो॥ ७१॥

स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाऽऽढके भवेत्।
अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च लालाहतं भवेत्॥ ७२॥

तो थोड़े अन्न को ब्राह्मण त्याग कर देवे और द्रोणाढक भर होने से शुद्ध ही गिना जाता है; किन्तु इतना अवश्य करना पड़ता है कि जितने में लाला (लार) लगी हो उतना अन्न निकाल कर फेंक दें॥ ७२॥

सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशेनैव तापयेत्।
हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च॥ ७३॥
विप्राणां वेदघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात्।
स्नेहो वा गोरसो वाऽपि तत्र शुद्धिः कथं भवेत्?॥ ७४॥

और जो शेष है उसको सुवर्ण के जल से सेंक करके अग्नि से तपाना। वह अग्नि और सोने के जल से संस्पृष्ट हुआ और ब्राह्मणों की वेदध्वनि से उसी क्षण शुद्ध होकर भोजन के योग्य हो जाता है। परन्तु यदि स्नेह (घी, तेल आदि) अथवा गोरस (दूध, दही) हो तो उसकी शुद्धि कैसे होगी?॥ ७३-७४॥

अल्पं परित्यजेदन्नं स्नेहस्योत्पवनेन च।
अनलज्वालया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते॥ ७५॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे प्राणिहत्यादिनिष्कृतिर्नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

उसमें से थोड़ा निकाल लेना और स्नेह द्रव्य को पवित्र करने से अर्थात् कुशा के पत्र से कुछ-कुछ जल के छीटें डाल देने से और गोरस की शुद्धि अग्निज्वाला से होती है॥ ७५॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में प्राणिहत्यादिप्रायश्चित्त नामक

षष्ठ अध्याय समाप्त॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

अथातो द्रव्यसंशुद्धिः पराशरवचो यथा।
दारवाणां तु पात्राणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते॥ १॥

अब पराशर जी के वाक्यानुसार द्रव्यों की शुद्धि यों है कि काठ के पात्रों में यदि अमेध्य वस्तु लग जावे तो उन्हें कुछ-कुछ छील देने से शुद्धि हो जाती है॥ १॥

मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि।
चामसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु॥ २॥

और यज्ञकर्म में यज्ञपात्रों की शुद्धि हाथ द्वारा पोंछने से ही हो जाती है। चमस तथा ग्रह नामक पात्रों की शुद्धि जल से धोने से होती है॥ २॥

चरूणां च स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा।
भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यते॥ ३॥

चरु द्रव्य और स्रुव पात्र की शुद्धि उष्ण जल द्वारा प्रक्षालन से होती है। काँसे का पात्र भस्म (राख) से मलने से शुद्ध होता है; और ताँबे की शुद्धि अम्ल (खटाई) से होती है॥ ३॥

रजसा शुध्यते नारी विकलं या न गच्छति।
नदी वेगेन शुध्येत लेपो यदि न दृश्यते॥ ४॥

नारी अर्थात् पीतल के पात्र की शुद्धि रज (धूलि वा मिट्टी) से होती है (कोई यों अर्थ करते हैं कि नारी अर्थात् स्त्री की शुद्धि रजोधर्म से होती है परन्तु वह विकल (अतिभ्रष्ट) न हुई हो तो)। नदी की शुद्धि वेग से होती है यदि लेप न दीख पड़े तो॥ ४॥

वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथञ्चन।
उद्धृत्य वै कुम्भशतं पञ्चगव्येन शुध्यति॥ ५॥

यदि किसी भाँति वापी, कूप, और तडाग दूषित हो गए हों तो सौ घड़े जल निकाल कर पञ्चगव्य डालने से शुद्ध होते हैं॥ ५॥

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥ ६॥

आठ वर्ष की लड़की 'गौरी', नौ वर्ष की 'रोहिणी' और दस वर्ष की 'कन्या' कहलाती है। इसके बाद 'रजस्वला' कहलाती है॥ ६॥

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम्॥ ७॥

बारह बरस होने पर जो कन्या दान नहीं कर देते तो उनके पितर स्वयं उस कन्या का रज प्रति मास पीते रहते हैं॥ ७॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥ ८॥

माता, पिता और जेठा भाई ये तीनों रजस्वला कन्या को देखने से नरक में जाते हैं॥ ८॥

यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः।
असम्भाष्यो ह्यपाङ्क्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः॥ ९॥

जो ब्राह्मण मद से मोहित होकर उस रजस्वला कन्या को ब्याह लेता है वह असम्भाषणीय और पंक्तिबाह्य होकर वृषलीपति कहलाता है॥ ९॥

यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः।
स भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुध्यति॥ १०॥

जो द्विज ऐसी वृषली का संग एक रात भर करता है वह तीन बरस तक भिक्षा माँग कर खाता रहे और नित्य जप करता रहे तब शुद्ध होता है॥ १०॥

अस्तङ्गते यदा सूर्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम्।
सूतिकां स्पृशतश्चैव कथं शुद्धिर्विधीयते?॥ ११॥

सूर्य के अस्त हो जाने पर यदि चाण्डाल, पतित अथवा सूतिका स्त्री को छू लेवे तो उसकी शुद्धि कैसे हो?॥ ११॥

जातवेदाः सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च।
ब्राह्मणानुमतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति॥ १२॥

जातवेद (अग्नि या चन्द्रमा), सुवर्ण और चन्द्रपथ को देखकर ब्राह्मण की आज्ञा लेकर सचैल स्नान करने से शुद्ध होता है॥ १२॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योऽन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुध्यति॥ १३॥

यदि रजस्वला ब्राह्मणी किसी दूसरी रजस्वला ब्राह्मणी को छू लेवे तो उन रजोधर्म के तीन दिनों तक बिना भोजन किये ही रहे तो तीन दिनों में शुद्ध होती है॥ १३॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योऽन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा।
अर्धकृच्छ्रं चरेत् पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा॥ १४॥

ब्राह्मणी रजस्वला यदि क्षत्रिया रजस्वला को छू लेवे तो ब्राह्मणी अर्द्धकृच्छ्र व्रत करे और क्षत्रिया पादकृच्छ्र करे॥ १४॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजा तथा।
पादहीनं चरेत् पूर्वा पादमेकमनन्तरा॥ १५॥

ब्राह्मणी रजस्वला यदि वैश्या रजस्वला को स्पर्श करे तो ब्राह्मणी पादहीनकृच्छ्र करे और वैश्या पादकृच्छ्र करे॥ १५॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योऽन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा।
कृच्छ्रेण शुध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुध्यति॥ १६॥

ब्राह्मणी रजस्वला यदि शूद्रा रजस्वला को छूये तो ब्राह्मणी पूर्ण-कृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध होती है, और शूद्रा दान देने से शुद्ध होती है॥ १६॥

स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुध्यति।
कुर्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैव-पित्र्यादिकर्म च॥ १७॥

जो रजस्वला हो वह चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होती है किन्तु देव तथा पितृकार्यों को तो रज की निवृत्ति होने पर करे॥ १७॥

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्त्तते।
नाशुचिः सा ततस्तेन तत्स्याद्वैकालिकं[१] मलम्॥ १८॥

यदि रोग के कारण स्त्री को प्रतिदिन रज निकले तो वह उस रज से अशुद्ध नहीं होती; क्योंकि वह अकालिक मल गिना जाता है॥ १८॥

---

१. 'वैकारिकं मलं' इति पाठान्तरम्।

साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्तते।
रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि॥ १९॥

जब तक रज निवृत्त न हो तब तक साधु (देवपूजादि) कर्म स्त्री न करे। रज निवृत्त होने पर ही स्त्री गमन के और गृहकार्य के योग्य होती है॥१९॥

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति॥ २०॥

रजोधर्म में स्त्री पहिले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के तुल्य रहती है, और चौथे दिन (वह) शुद्ध होती है॥ २०॥

आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुध्येत् स आतुरः॥ २१॥

यदि किसी आतुर (रोगी आदि) का नहाना आ पड़े तो अनातुर (स्वस्थ मनुष्य) दस बार नहा-नहा कर उसे छूये तब वह आतुर शुद्ध हो जाता है॥ २१॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति॥ २२॥

उच्छिष्ट अर्थात् जूठे मुँह वाले ब्राह्मण को दूसरा उच्छिष्ट अर्थात् जूठे मुँहवाला पुरुष, कुत्ता अथवा शूद्र छूये तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है॥ २२॥

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते।
तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत्॥ २३॥

यदि जूठे मुँह वाले ब्राह्मण को किसी अनुच्छिष्ट मुँह वाले शूद्र ने छू दिया हो तो वह स्नान करने मात्र से शुद्ध हो जाता है। यदि जूठे मुँह वाला शूद्र ब्राह्मण को छूदे तो उस ब्राह्मण को प्राजापत्यव्रत करना चाहिये॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते।
सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुध्यतेऽग्न्युपलेखनैः॥ २४॥

वह काँसे का पात्र भस्म मलने से शुद्ध होता है, जिसमें मदिरा का लेप न हुआ हो। यदि मदिरा से छू गया हो तो अग्नि में जलाने से शुद्ध होता है॥ २४॥

गवाघ्रातानि कांस्यानि श्व-काकोपहतानि च।
शुध्यन्ति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च॥ २५॥

जिस काँसे को गाय ने सूँघ लिया हो अथवा कुत्ते व काक ने दूषित किया हो तो वह दस बार खारी मिट्टी के मलने से शुद्ध होता है; और इसी भाँति शूद्र का जूठा काँसा का पात्र भी शुद्ध होता है॥ २५॥

गण्डूषं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने।
षणमासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत्॥ २६॥

यदि काँसे के पात्र में कुल्ली करे या पाँव धावे तो छः महीने तक उसे पृथ्वी में गाड़ के रक्खे, अनन्तर निकाल ले॥ २६॥

आयसेष्वायसानां च सीसस्याग्नौ विशोधनम्।
दन्तमस्थि तथा शृङ्गं रौप्यं सौवर्णभाजनम्॥ २७॥
मणिपात्राणि शङ्खश्चेत्येतान् प्रक्षालयेज्जलैः।
पाषाणे तु पुनर्घर्षं शुद्धिरेवमुदाहृता॥ २८॥

लोहे के पात्र को लोहे से घिसे; और सीसे के पात्र को अग्नि में डालने से शुद्धि होती है। दन्त, हड्डी, शृङ्ग, चाँदी और सोने का पात्र मणिपात्र और शंख—इन्हें जल में धो डाले और पत्थर पर घिसे तो इनकी शुद्धि होती है॥ २७-२८॥

[1]मृण्मये दहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि।
वेणु-वल्कल-चीराणां क्षौम-कार्पासवाससाम्॥ २९॥
[2]और्ण-नेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते।
मुञ्जोपस्कर-शूर्पाणां शणस्य फल-चर्मणाम्॥ ३०॥

मिट्टी के पात्र की शुद्धि अग्नि में जलाने से और धान्यों को जल के छींटे

१. 'मृद्भाण्डदहनात्' इति पाठान्तरम्।
२. 'और्णानां नेत्रपट्टानां जलाच्छौचं विधीयते' इति पुस्तकान्तरे।

देने से वेणु-पात्र (बाँस की टोकरी आदि) तथा वल्कल, चीर (भोजपत्रादि के वस्त्र), अलसी (तीसी) और कपास के वस्त्रों की भी इसी भाँति ऊन (कम्बल आदि), और नेत्र (रेशम) के वस्त्रों की शुद्धि जल के छींटे देने से ही होती है। मूँज, उपस्कर (झाड़ू आदि), सूप, सन की रस्सी, फल और चर्म की॥ २९-३०॥

तृणकाष्ठस्य रज्जूणामुदकाभ्युक्षणं मतम्।
तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च॥ ३१॥

तृण, काठ, रस्सियों की शुद्धि जल छिड़कने से होती है। रूई के तकिये, रँगे हुए वस्त्र आदि को॥ ३१॥

शोषयित्वाऽर्कतापेन[1] प्रोक्षणाच्छुद्धितामियुः।
मार्जार-मक्षिका-कीट-पतङ्ग-कृमि-दर्दुराः॥ ३२॥

धूप में सुखाकर जल का छींटा दे तो शुद्ध होते हैं। बिल्ली, मक्खी, कीट, पतङ्ग, कृमि, और मेंढक॥ ३२॥

मेध्यामेध्यं स्पृशन्तोऽपि नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्।
महीं स्पृष्ट्वाऽऽगतं तोयं याश्चाप्यस्याऽऽस्यविप्रुषः॥ ३३॥

ये पवित्र और अपवित्र वस्तुओं को छू कर ही उच्छिष्ट (अशुद्ध) नहीं होते— ऐसा मनु ने कहा है। धरती में गिरकर जो जल आवे और बोलने में जो आपस में मुँह से निकलकर थूक के कण पड़ते हैं॥ ३३॥

भुक्तोच्छिष्टं तथा स्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्।
ताम्बूलेक्षु-फले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने॥ ३४॥

भोजन में बारम्बार ग्रास लेने से, अन्न और तेल आदि बारम्बार लेकर लगाने से जूठे नहीं होते— इसे भी मनु ने कहा है। पान, ईख, फल, भोजन किए चिकने (घी) का लेप॥ ३४॥

मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं [2]धर्मतो विदुः।
रथ्याकर्दम-तोयानि नावः पन्थास्तृणानि च॥ ३५॥

---

१. 'ऽऽतपेनैव' इति पाठान्तरम्।

२. 'मनुरब्रवीत्' इति पाठान्तरम्।

मधुपर्क और सोमलता का रस इनमें जूठापन धर्म से ही नहीं होता है। गली, कीचड़, जल, नौका, सड़क और तृण ॥ ३५ ॥

मारुतार्केण शुध्यन्ति पक्केष्टकचितानि च।
अदुष्टाः सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥ ३६ ॥

सब धूप और वायु लगने से शुद्ध होते हैं। इसी भाँति पकी हुई ईटों की राशि, सदा बहती हुई धारा और वायु से उड़ी हुई धूल भी अशुद्ध नहीं ॥ ३६ ॥

स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः न दुष्यन्ति कदाचन।
क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ॥ ३७ ॥

स्त्री, बालक और वृद्ध इन्हें भी कभी दोष नहीं। छींकने, थूकने, दाँतों में जूठा रह जाने और झूठ बोलने में ॥ ३७ ॥

पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्।
अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा ॥ ३८ ॥

तथा पतित के साथ बातचीत करने में दाहिने कान को छूये; क्योंकि अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य और वायु ॥ ३८ ॥

एते सर्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे।
प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥ ३९ ॥

ये सभी ब्राह्मणों के दाहिने कान में रहते हैं। प्रभास आदिक तीर्थ और गंगा आदिक नदियाँ भी ॥ ३९ ॥

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत्।
देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥ ४० ॥

ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण में सन्निहित रहती हैं— ऐसा मनु ने कहा है। देशोपद्रव में, विदेश में, व्याधि और व्यसन में ॥ ४० ॥

रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत्।
येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥ ४१ ॥

अपने देह आदि की रक्षा पहले करे पश्चात् धर्म करे। जिस किसी मृदु वा दारुण धर्म से ॥ ४१ ॥

उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्।

आपत्काले तु [1]निस्तीर्णे शौचाचारं विचिन्तयेत्॥
शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो[2] धर्मं समाचरेत्॥ ४२॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे द्रव्यशुद्धिर्नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अपने दीन आत्मा का उद्धार करके पीछे से समर्थ होकर धर्माचरण करे। आपत्काल बीत जाने पर शौच और आचार की चिन्ता करे॥ ४२॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में द्रव्यशुद्धि नामक
सप्तम अध्याय समाप्त॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

गवां बन्धनयोक्त्रेषु भवेन्मृत्युरकामतः।
अकामकृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत्?॥ १॥

यदि बाँधते या जोतते समय बिना चाहे ही (अनजान में) गौ-बैल की मृत्यु हो जावे तो इस अनचाहे पाप का प्रायश्चित कैसे होगा?॥ १॥

वेद-वेदाङ्गविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम्।
स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत्॥ २॥

वेद, वेदाङ्ग और धर्मशास्त्र के जानने वाले और अपने कर्म में संलग्न विद्वानों से अपना पाप कहना चाहिये॥ २॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम्।
उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशनमर्हति॥ ३॥

अब उन विद्वानों के पास जोने का प्रकार सुनो। जब उचित प्रकार से उसके पास जाये तो वह व्रतोपदेश के योग्य होता है॥ ३॥

---

१. 'सम्प्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत्' इति पुस्तकान्तरे।

२. 'समर्थो धर्ममाचरेत्' इति पाठान्तरम्।

सद्यो निःसंशये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः।
भुञ्जानो वर्धयेत्पापं पर्षद्यत्र न विद्यते॥ ४॥

जहाँ पर परिषद् (विद्वानों की सभा) न हो और पाप किसी को निश्चय करके लग ही जाये, तो वह विद्वानों के पास जाये। बिना गए चाहे जितनी देर लगे भोजन न करे। यदि भोजन कर ले तो उसका पाप बढ़ जाता है॥ ४॥

संशये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः।
प्रमादश्च न कर्तव्यो यथैवासंशयस्तथा॥ ५॥

पाप का सन्देह हो गया हो तब भी बिना निश्चय किये भोजन न करे। इसमें प्रमाद (गलती) कभी न करे। जिससे सन्देह दूर हो उसे करे॥ ५॥

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते।
स्वल्पं वाऽथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत्॥ ६॥

पाप करके छिपाये नहीं; छिपाने से पाप बढ़ता है। थोड़ा हो या बहुत, धर्मविज्ञों से निवेदन करे॥ ६॥

ते हि पापे कृते वैद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम्।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः॥ ७॥

वे ही पाप के मारनेवाले पापी लोगों के वैद्य हैं; जैसे रोगी मनुष्य के रोग छुड़ाने वाले बुद्धिमान् वैद्य होते हैं॥ ७॥

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्यपरायणः।
मृदुरार्जवसम्पन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः॥ ८॥

प्रायश्चित्त लगने पर लज्जावान्, सत्यपरायण, सरलता युक्त मनुष्य शुद्ध हो सकता है॥ ८॥

सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ततः पर्षदमाव्रजेत्॥ ९॥

वस्त्र समेत मौन होकर, नहा कर, उन्हीं गीले वस्त्रों से सावधानी पूर्वक, क्षत्रिय हो या वैश्य हो, परिषद् के पास जाये॥ ९॥

उपस्थाय ततः शीघ्रमार्तिमान् धरणीं व्रजेत्।
गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत्॥ १०॥

वहाँ झटपट अतिदुःखी होकर, भूमि पर सिर और सारी देह लम्बी कर, दण्डवत् प्रणाम करे और मुँह से कुछ भी न बोले॥ १०॥

सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः।
अज्ञानात् कृषिकर्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः॥ ११॥

जो ब्राह्मण गायत्री या सावित्री नहीं जानते तथा सन्ध्यावन्दन और अग्निहोत्र नहीं जानते, अज्ञानता से खेती करते हैं, वे नाममात्र के ब्राह्मण हैं॥ ११॥

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते॥ १२॥

बिना व्रतवाले, बिना मन्त्र जाननेवाले, जातिमात्र से ही जीविका करने वाले ब्राह्मण यदि हजारों इकट्ठे हों तो परिषद् नहीं कही जा सकती॥ १२॥

यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄनधिगच्छति॥ १३॥

जो कुछ वे अज्ञानी और धर्म के न जानने वाले मूर्ख लोग कहते हैं तो वह पाप सौ गुना होकर उन कहने वालों को लग जाता है॥ १३॥

अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः।
प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं पर्षदि व्रजेत्॥ १४॥

धर्मशास्त्र बिना जाने ही जो प्रायश्चित्त बतलाता है तो प्रायश्चित्ती शुद्ध हो जाता है और उसका पाप बतलाने वाले परिषद् को लग जाता है॥ १४॥

चत्वारो वा त्रयो वाऽपि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः॥ १५॥

तीन या चार वेदपारग मनुष्य जो कहें वही धर्म जानना; दूसरे सैकड़ों या हजारों के कहने से भी धर्म नहीं होता॥ १५॥

प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै।
तेषामुद्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम्॥ १६॥

प्रमाण (धर्मशास्त्र) का पथ चाहनेवाले (अनुसन्धान करने वाले)

लोग जो धर्म कहते हैं वस्तुतः उन्हीं, सत्य गुण कहनेवालों, से पाप डरता है॥ १६ ॥

यथाऽश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुध्यति।
एवं परिषदादेशान् नाशयेत्तस्य[1] दुष्कृतम्॥ १७॥

जिस प्रकार पत्थर पर स्थित जल हवा तथा सूर्य की किरणों के प्रभाव से सूख जाता है, उसी प्रकार वेदज्ञ ब्राह्मणों की परिषद् (सभा) के आदेश (सम्मति) से उसके पापों का भी नाश (प्रायश्चित्त) हो जाता है॥१७॥

[वक्तव्य— देखें परिषद् के प्रकार, मनु. १२।१०९-११५]

नैव गच्छति कर्तारं नैव गच्छति पर्षदम्।
मारुतार्कादि-संयोगात् पापं नश्यति तोयवत्॥ १८॥

वेदवेत्तापरिषद् के आदेश से प्रायश्चित्त करने वाले पुरुष का पाप न व्यवस्था देने वाली सभा को और न प्रायश्चित्त करने वाले पुरुष को लगता है। जैसे—हवा तथा सूर्य की किरण के संयोग से जल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वह पाप भी नष्ट हो जाता है॥ १८॥

चत्वारो वा त्रयो वाऽपि वेदवन्तोऽग्निहोत्रिणः।
ब्राह्मणानां समर्था ये परिषत् साऽभिधीयते[2]॥ १९॥

परिषद् परिचय—वेदविद्या को जानने वाले तथा अग्निहोत्री तीन या चार ब्राह्मणों के समूह को परिषद् कहते हैं। ये ही प्रायश्चित्त देने में समर्थ होते हैं॥ १९॥

अनाहिताग्नयो येऽन्ये वेद-वेदाङ्गपारगाः।
पञ्च त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत् सा प्रकीर्तिता॥ २०॥

जो अग्निहोत्र न करते हों, किन्तु वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत हों, ऐसे तीन या पाँच ब्राह्मणों के समूह को भी परिषद् कहते हैं॥ २०॥

मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम्।
वेदव्रतेषु स्नातानामेकाऽपि परिषद् भवेत्॥ २१॥

---

१. 'तत्र' इति।

२. 'विधीयते' इति।

आत्मतत्त्व के ज्ञाता मुनि, विविध प्रकार के यज्ञों को कराने वाले ब्राह्मणों तथा वेदव्रतस्नातक— इस प्रकार की विशेषताओं से युक्त किसी एक ब्राह्मण को भी परिषद् कहते हैं॥ २१ ॥

पञ्च पूर्वं मया प्रोक्तास्तेषां चाऽसम्भवे त्रयः।
स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत् सा प्रकीर्तिता॥ २२॥

मैंने पाँच प्रकार की परिषदों का उपदेश दिया है, यथा—१९वें श्लोक में १ प्रकार की परिषद्, २०वें श्लोक में २ प्रकार की परिषद् तथा २१वें श्लोक में ३ प्रकार की— इस प्रकार ये पाँच प्रकार की परिषदें शास्त्रसम्मत हैं। यदि ये परिषदें सुलभ न हों तो जो अपनी वृत्ति (आजीविका) से सन्तुष्ट रहते हैं, उन ब्राह्मणों को भी परिषद् कहते हैं॥ २२॥

अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः।
परिषत्त्वं न [1]तेष्वस्ति सहस्त्रगुणितेष्वपि॥ २३॥

इनके बाद जो वेद-शास्त्र के ज्ञाता नहीं है, अग्निहोत्र आदि पुण्य कार्य नहीं करते, केवल नाममात्र के ब्राह्मण हैं उनकी संख्या भले ही हजारगुना हो, वे परिषद् का सम्मान प्राप्त नहीं कर सकते॥ २३॥

यथा काष्ठमयो [2]हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः॥ २४॥

जिस प्रकार काठ का हाथी तथा चमड़े का मृग— ये किसी उपयोग में नहीं आते; ठीक उसी प्रकार वेद तथा शास्त्रों के अध्ययन से रहित ब्राह्मण ये तीनों केवल नाममात्र के हैं, इनका समाज में कोई उपयोग नहीं है॥२४॥

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः।
यथा हुतमनग्नौ च नामन्त्रो ब्राह्मणस्तथा॥ २५॥

जिस प्रकार मनुष्यों से रहित गाँव शून्य है, जैसे पानी रहित कुआँ व्यर्थ है, जैसे भस्म के समूह में किया गया हवन निष्फल है, ठीक वैसे ही मन्त्रज्ञान- रहित ब्राह्मण किसी उपयोग में नहीं आता॥ २५॥

---

१. 'तेषां वै' इति।

२. 'दन्ती' इति।

यथा षण्डोऽफलः स्त्रीषु तथा गौरूषराऽफला।
यथा चाऽज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥ २६॥

जिस प्रकार वीर्य रहित (नपुंसक) पुरुष स्त्रियों के लिये व्यर्थ है, जैसे ऊसर भूमि अन्न उत्पादन के लिये व्यर्थ है, जैसे मूर्ख ब्राह्मण को दान देना व्यर्थ है, उसी प्रकार वेदज्ञानविहीन ब्राह्मण भी निष्फल है॥ २६॥

चित्रकर्म यथाऽनेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि [1]तद्वद्धि संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः॥ २७॥

जिस प्रकार अनेक रङ्गों के संयोजन से धीरे-धीरे चित्रकारी उभरती जाती है, उसी प्रकार जातकर्म आदि मन्त्रपूर्वक किये गये विविध संस्कारों से ब्राह्मणत्व भी प्रस्फुटित होता है, अर्थात् ब्रह्मतेज चमकने लगता है॥ २७॥

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः।
ते द्विजाः पापकर्माणः समेता नरकं ययुः॥ २८॥

केवल नाममात्र के ब्राह्मण जिस प्रायश्चित्त की व्यवस्था देते हैं, ऐसे ब्राह्मणों को पापकर्म करने वाला कहा गया है। ऐसे ये सभी नरकगामी होते हैं॥ २८॥

ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये।
त्रैलोक्यं तारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरता अपि॥ २९॥

जो ब्राह्मण वेदों का स्वरसहित पाठ करते हैं, जो पञ्चयज्ञों को करते हैं, वे ज्ञानी हैं। पञ्चेन्द्रियों का सेवन करने पर भी अर्थात् गृहस्थ धर्म का पालन करने पर भी वे तीनों लोकों को तारते हैं॥ २९॥

सम्प्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः।
तथा च वेदविद् विप्रः सर्वभक्षोऽपि दैवतम्॥ ३०॥

जिस प्रकार श्मशान भूमि में जलायी गयी अग्नि सभी को खा जाती है, इसी प्रकार वेदशास्त्र का ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण सब कुछ खा लेने पर भी देवतुल्य पूज्य ही है॥ ३०॥

---

१. 'तद्विद्धि' इति पाठान्तर।

अमेध्यानि तु सर्वाणि प्रक्षिप्यन्ते यथोदके।
तथैव किल्विषं सर्वं प्रक्षिपेच्च द्विजानले॥ ३१॥

जिस प्रकार सभी अपवित्र वस्तुओं को जल में प्रवाहित कर दिया जाता है, फिर भी जल पवित्र ही रहता है। उसी प्रकार अपने सभी पापों को अग्निरूप ब्राह्मण के सामने रख देना चाहिये॥ ३१॥

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत्।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः सम्पूज्यन्ते जनैर्द्विजाः॥ ३२॥

प्रतिदिन गायत्री का जप न करने वाला ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक अपवित्र होता है। गायत्री के तत्त्व को और ब्रह्म के तत्त्व को जानने वाले ब्राह्मण संसार में पूजे जाते हैं॥ ३२॥

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः।
कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम्?॥ ३३॥

शीलरहित ब्राह्मण भी पूज्य होता है, जितेन्द्रिय शूद्र उसकी बराबरी नहीं कर सकता। दुष्ट (लात मारने वाली) गाय को भी लोग दुहते ही हैं, न कि सीधी-साधी गधी को कोई दुहता है॥ ३३॥

धर्मशास्त्ररथाऽऽरूढा वेदखड्गधरा द्विजाः।
क्रीडार्थमपि यद् ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः॥ ३४॥

धर्मशास्त्र रूपी रथ पर बैठे हुए तथा वेदरूपी तलवार को धारण किये हुए ब्राह्मण मनोविनोद के लिये भी जो कुछ कहते हैं, वह भी परमधर्म माना गया है॥ ३४॥

चातुर्वैद्योऽविकल्पी च ह्यङ्गविद्धर्मपाठकाः।
त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेशा दशावरा॥ ३५॥

चारों वेदों के ज्ञाता, शास्त्रों में सन्देह रहित, वेद-वेदाङ्गों को जानने वाला, धर्मशास्त्र को पढ़ाने वाला तथा तीन प्रमुख आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ) को मिलाकर एक पर्षत् मानी गयी है। इसमें सदस्य संख्या १० से कम नहीं होनी चाहिये॥ ३५॥

राज्ञश्चाऽनुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्।
स्वयमेव न कर्तव्यं कर्तव्या स्वल्पनिष्कृतिः॥ ३६॥

राजा की आज्ञा के अनुसार ही ब्राह्मण को प्रायश्चित्त की व्यवस्था देनी चाहिये। अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी निर्देश न दें। यदि छोटा प्रायश्चित्त हो तो उसके सम्बन्ध में कुछ बतलाया जा सकता है॥ ३६॥

ब्राह्मणांस्तानतिक्रम्य राजा कर्त्तुं [1]यदिच्छति।
तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति॥ ३७॥

यदि धर्मशास्त्रज्ञ ब्राह्मणों का अतिक्रमण करके अर्थात् उनकी आज्ञा को न मान कर स्वयं प्रायश्चित्त की व्यवस्था करता है, तो पापी पुरुष का वह पाप सौ गुना होकर राजा को भोगना पड़ता है। अतः राजा और ब्राह्मण दोनों की अनुमति से प्रायश्चित्त करें॥ ३७॥

प्रायश्चित्तं सदा दद्याद् देवतायतनाग्रतः।
आत्मकृच्छ्रं ततः कृत्वा जपेद् वै वेदमातरम्॥ ३८॥

ब्राह्मण जब भी प्रायश्चित्त दे, उसका कर्मस्थल देवमन्दिर के सामने हो। प्रायश्चित्त का निर्देश करने वाला ब्राह्मण प्रायश्चित्त देकर आत्मकृच्छ्र करके वेदमाता गायत्री का यथाशक्ति जप करे॥ ३८॥

सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम्।
गवां मध्ये वसेद् रात्रौ दिवा गाश्चाऽप्यनुव्रजेत्॥ ३९॥

जिससे गोहत्या हो गयी हो, वह शिखा सहित मुण्डन करके प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल स्नान करे। रात्रि में गोशाला में सोये और दिन भर गायों के पीछे-पीछे घूमे॥ ३९॥

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्।
न कुर्वीताऽऽत्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः॥ ४०॥

गर्मी, वर्षा, जाड़ा की ऋतुओं में वेग से हवा के बहने पर भी अपनी शक्ति के अनुसार जब तक गायों की सुरक्षा की व्यवस्था न कर ले, तब तक अपने देह की रक्षा का प्रयत्न न करे॥ ४०॥

आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रे खलेऽथवा।
भक्षयन्तीं न कथयेत् पिबन्तं चैव वत्सकम्॥ ४१॥

---

१. 'यदीच्छति' इति पा०।

यदि गाय अपने अथवा किसी दूसरे के घर में, खेत में अथवा खलिहान में अन्न (फसल) आदि खा रही हो अथवा अपने बछड़ा को दूध पिला रही हो, तो किसी से न कहे॥ ४१॥

पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत्।
पतितां [१]पङ्कमग्नां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत्॥ ४२॥

वह प्रायश्चित्त करने वाला गाय के जल पीने पर स्वयं भी जल पीये, गाय यदि सो जाय या लेट जाय तब स्वयं भी विश्राम करे। यदि वह कीचड़ में फँस जाय या गिर जाय तो प्राणपण से उसे उठाये तथा उसे कीचड़ से निकाले॥ ४२॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता [२]गोर्ब्राह्मणस्य च॥ ४३॥

ब्राह्मण तथा गाय की रक्षा के लिये जो अपने प्राणों का परित्याग कर देता है, वह ब्रह्महत्या के पाप से भी छूट जाता है। गाय तथा ब्राह्मण की रक्षा करने वाला भी ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है॥ ४३॥

[वक्तव्य—यहाँ 'वा' का अर्थ समुच्चय है। द्रष्टव्य-मेदिनी एवं विश्वकोष]

गोवधस्याऽनुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत्।
प्राजापत्यं ततः कृच्छ्रं [३]विभजेत् तच्चतुर्विधम्॥ ४४॥

जिस प्रकार गोवध हुआ हो उसके अनुरूप ही प्राजापत्य व्रत करने की व्यवस्था देनी चाहिये। प्राजापत्य व्रत तथा कृच्छ्र को चार भाग में बाँट देना चाहिये॥ ४४॥

एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः।
अयाचितस्यैकमहरेकाहं मारुताशनः॥ ४५॥

१. प्रथम प्राजापत्य— एक दिन में केवल एक समय (दिन में), दूसरे दिन केवल रात्रि में भोजन करे। तीसरे दिन बिना मांगे जो मिल जाये, उसे भी एक बार ही खाये, चौथे दिन केवल हवा पीकर रह जाय॥ ४५॥

---

१. 'पङ्कलग्नां' इति पा०। २. 'गोब्राह्मणस्य' इत्यपि पाठः।
३. 'विभजेत चतुर्विधम्' इति।

दिनद्वयं चैकभक्तो द्विदिनं नक्तभोजनः।
दिनद्वयमयाची स्याद् द्विदिनं मारुताशनः॥ ४६॥

२. द्वितीय प्राजापत्य— दो दिन तक दिन में एक बार, फिर दो दिन तक रात्रि में एक बार, फिर दो दिन अयाचित अन्न खाये, उसके अगले दो दिनों में हवा पीकर रह जाय॥ ४६॥

त्रिदिनं चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः।
दिनत्रयमयाची स्यात् त्रिदिनं मारुताशनः॥ ४७॥

३. तृतीय प्राजापत्य— तीन दिन तक दिन में एक बार, फिर तीन दिन तक रात्रि में एक बार, फिर तीन दिन अयाचित अन्न खाये, उसके अगले तीन दिनों में हवा पीकर रह जाय॥ ४७॥

चतुरहं त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः।
चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः॥ ४८॥

४. चतुर्थ प्राजापत्य— चार दिन तक दिन में एक बार, फिर चार दिन तक रात्रि में एक बार, फिर चार दिन अयाचित अन्न खाये, उसके अगले चार दिनों में हवा पीकर रह जाय॥ ४८॥

[वक्तव्य— उक्त पद्य छन्द की दृष्टि से अशुद्ध है। तीसरे पाद को छोड़कर शेष तीनों पादों में नौ अक्षर हैं। अनेक संस्करणों को देखने पर भी शुद्ध पाठ भेद नहीं मिला।]

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
विप्राणां दक्षिणां दद्यात् पवित्राणि जपेद् द्विजः॥ ४९॥

प्रायश्चित्त कर लेने पर ब्राह्मणों को भोजन कराये, उन्हें दक्षिणा दे फिर पवमानसूक्तों का ब्राह्मण जप करे॥ ४९॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोघ्नः [१]शुद्धो न संशयः॥ ५०॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रेऽकामकृतपापप्रायश्चित्तं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

१. 'शुद्ध्येन्न' इति।

गोहत्या करने वाला व्यक्ति प्रायश्चित्त करने के बाद ब्राह्मणभोजन कराकर निश्चित रूप से शुद्ध हो जाता है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं॥ ५०॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में अकामकृतपापप्रायश्चित्त नामक
अष्टम अध्याय समाप्त॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद् रोध-बन्धयोः।
तद्वधं तु न तं विद्यात् कामाऽकामकृतं तथा॥ १॥

यदि गायों की सुरक्षा करने की दृष्टि से कोई व्यक्ति उन्हें घेर कर बाँध ले, इसके कारण किसी गाय की मृत्यु हो जाय, तो वह मनुष्य गोवध का भागी नहीं होता।

[इसमें कामकृत (इच्छा से किये हुए) अथवा अकामकृत (अनिच्छा से किये हुए) प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि यह गोहत्या नहीं है।]

दण्डादूर्ध्वं यदन्येन प्रहाराद् यदि पातयेत्।
प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधे चरेत्॥ २॥

उक्त दण्डव्यवस्था के बाद यदि किसी दूसरे प्रकार के प्रहारों से गाय को मारा जाता है, तो उसका दूना प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ २॥

रोध-बन्धन-योक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम्।
एकपादं चरेद् रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्॥ ३॥

किसी गाय, बैल को रोकने, बाँधने, जोतने तथा मारने-पीटने इन चार प्रकारों से गोवध होता है। यदि गाय को रोकने मात्र से उसकी मृत्यु हो गयी हो तो चौथाई व्रत करे और यदि बाँधने से मृत्यु हो गयी हो तो आधा प्रायश्चित्त व्रत करे॥ ३॥

योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्याच्चरेत् सर्वं निपातने।
[1]गोवाटे वा गृहे वाऽपि दुर्गे वाऽप्यसमस्थले॥ ४॥
नदीष्वथ समुद्रेषु त्वन्येषु च नदीमुखे।
दग्धदेशे मृता गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते॥ ५॥

हल जोतते समय यदि गो (गाय, साँड़, बैल) का वध हो जाय तो तीन चौथाई तथा मार डालने पर सम्पूर्ण प्रायश्चित्त करना चाहिये। गोशाला, घर, किला, विषमभूमि, नदियों में, नदी के उद्गम स्थानों में, आग लगे हुए स्थान में गाय की मृत्यु हो जाय तो उसे 'रोध' कहते हैं॥ ४-५॥

योक्त्र-दामक-दोरैश्च कण्ठाभरण-भूषणैः।
गृहे वाऽपि वने वाऽपि बद्धा स्याद् गौर्मृता यदि॥ ६॥
तदेव बन्धनं विद्यात् कामाऽकामकृतं च यत्।
हले वा शकटे पङ्क्तौ पृष्ठे वा पीडितो नरैः॥ ७॥

योक्त्र (रस्सी, डोरी), गाड़ी का जुआ, दोरक (डोरा), गले में पहनायी हुई माला आदि से बंधी हुई गाय का घर में या वन में मरण होना बन्धन कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है— १. कामकृत तथा २. अकामकृत। हल में, गाड़ी में अथवा कतार में बँधे हुए अथवा पीठ पर लदे हुए भार के कारण मनुष्य से पीड़ित होकर यदि गोपति (साँड़) की मृत्यु हो जाती है, तो उसे 'योक्त्रवध' कहते हैं॥ ६-७॥

गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्वधः।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः॥ ८॥
कामाऽकामकृतक्रोधी दण्डैर्हन्यादथोपलैः।
प्रहता वा मृता वाऽपि तद्धि हेतुर्निपातने॥ ९॥

धन आदि के मद से मत्त, सुरापान आदि से प्रमत्त, भूत-प्रेत बाधा से उन्मत्त, चेतन तथा अचेतन अवस्था में, इच्छा से अथवा अनिच्छा से, क्रोध के कारण दण्ड अथवा पत्थरों से मार डालने को निपातन कहते हैं॥ ८-९॥

अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः।
आर्द्रस्तु सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते॥ १०॥

---
१. 'गोचरे' इति पा०।

अंगूठे के बराबर मोटी, हाथ के बराबर लम्बी, पत्ती सहित गीली लकड़ी को 'दण्ड' कहते हैं॥ १०॥

मूर्च्छितः पतितो वाऽपि दण्डेनाऽभिहतः स तु।
उत्थितस्तु यदा गच्छेत् पञ्च सप्त दशैव वा॥ ११॥
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वाऽपि पिबेत् यदि।
पूर्वं व्याध्युपसृष्टश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ १२॥

डण्डे के प्रहार से पीड़ित गाय-बैल यदि मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, फिर उठकर पाँच, सात, दस कदम चले, कुछ खाने-पीने लग जाय और वह पहले से रोगी भी हो तथा मर जाय तो उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं किया जाता॥ ११-१२॥

पिण्डस्थे पादमेकं तु द्वौ पादौ गर्भसम्मिते।
पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम्॥ १३॥

यदि गाय को मारने-पीटने से उसके १५ दिन का गर्भ गिर जाय तो सम्पूर्ण चान्द्रायण व्रत का चौथाई, एक मास का गर्भ गिर जाय तो आधा, सात मास तक का गर्भ गिर जाय तो तीन चौथाई व्रत करे॥ १३॥

पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च।
त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखं तु निपातने॥ १४॥

मुण्डनविचार— चौथाई व्रत करने पर शरीर के रोम, आधा व्रत करने पर रोम, मूंछ, दाढ़ी, तीन चौथाई व्रत करने पर शिखा के अतिरिक्त सम्पूर्ण मुण्डन करायें। निपातन (वध) करने में शिखासहित सम्पूर्ण मुण्डन कराना चाहिये॥ १४॥

पादे वस्त्रयुगं चैव द्विपादे कांस्यभाजनम्।
त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम्॥ १५॥

दक्षिणादिनिर्देश— चौथाई व्रत करने पर ब्राह्मण को दो वस्त्र (धोती, कुर्ता) दे, आधा व्रत करने पर काँसा की थाली दे, तीन-चौथाई व्रत करने पर साँड़ का दान करे और सम्पूर्ण व्रत करने पर अन्त में दो गायों का दान करे॥ १५॥

निष्पन्नसर्वगात्रस्तु दृश्यते वा सचेतनः।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णो द्विगुणं गोव्रतं चरेत्॥ १६ ॥

जब गाय का गर्भस्थ शिशु सजीव तथा अंग-प्रत्यंगों से सम्पूर्ण हो गया हो, उस समय यदि गोहत्या हो जाय तब दो गायों के वध के समान दुगुना प्रायश्चित्त करें॥ १६ ॥

पाषाणेनाथ[1] दण्डेन गावो येनाऽभिघातिताः।
शृङ्गभङ्गे चरेत् पादं द्वौ पादौ नेत्रघातने॥ १७॥

किसी के पत्थर या डण्डे से गाय को मारने से उसका सींग टूट गया हो तो चौथाई व्रत करे, यदि उससे उसकी आँख फूट गयी हो तो आधा व्रत करे॥१७॥

लाङ्गूले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभञ्जने।
त्रिपादं चैव कर्णे तु चरेत् सर्वं निपातने॥ १८॥

पूँछ के कट जाने पर पादकृच्छ्र (चौथाई कृच्छ्र चान्द्रायण) व्रत करे, हड्डी टूट जाने पर आधा कृच्छ्र व्रत करे, कान टूटने पर तीन-चौथाई और मृत्यु होने पर पूर्ण व्रत करे॥ १८॥

शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभङ्गे तथैव च।
यदि जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ १९॥

गोहत्या की विकल्पविधि— सींग, हड्डी तथा कमर टूटने पर भी यदि गाय छः मास तक जीवित रह जाती है, तो उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं होता॥ १९॥

व्रणभङ्गे च कर्त्तव्यः स्नेहाभ्यङ्गस्तु पाणिना।
यवसश्चोपहर्त्तव्यो यावद् दृढबलो भवेत्॥ २०॥

यदि अपने हाथ से गाय का फोड़ा फूट गया हो तो उसे साफ करके उसमें प्रतिदिन घी-तेल का फाहा अपने हाथ से रखे और उसे स्वस्थ होने तक घास-भूसा देता रहे॥ २०॥

यावत्सम्पूर्णसर्वाङ्गस्तावत् तं पोषयेन्नरः।
गोरूपं ब्राह्मणस्याऽग्रे नमस्कृत्वा विसर्जयेत्॥ २१॥

---
१. 'नैव' इति क्वचित्पुस्तके।

जब तक गाय का व्रण भर न जाय तब तक उसका पालन-पोषण करे। ठीक हो जाने पर उसे किसी योग्य ब्राह्मण को प्रणामपूर्वक दे दें॥ २१॥

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत् तदा।
गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्॥ २२॥

यदि घाव भरने से पहले वह साँड़ मर जाय, तो उस फोड़ा फोड़नेरूपी गोघातक को आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ २२॥

काष्ठ-लोष्टक-पाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात्।
व्यापादयति यो गां तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत्॥ २३॥

लकड़ी, ढेला या ईंट, पत्थर अथवा शस्त्र हाथ में लिया हुआ मनुष्य जब जबरदस्ती गाय को मार देता है, उसके प्रायश्चित्त की विधि इस प्रकार बतलायी गयी है॥ २३॥

चरेत् सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्टके।
तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चैवाऽतिकृच्छ्रकम्॥ २४॥

लकड़ी द्वारा मारने पर सान्तपन नामक, ईंट से मारने पर प्राजापत्य, पत्थर से मारने पर तप्तकृच्छ्र और शस्त्र द्वारा मारने पर अतिकृच्छ्र नामक व्रत करना चाहिये॥ २४॥

पञ्च सान्तपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः।
तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश॥ २५॥

सान्तपन व्रत में ५, प्राजापत्य में ३, तप्तकृच्छ्र में ८ तथा अतिकृच्छ्र व्रत में १३ गोदान करने का विधान बतलाया गया है॥ २५॥

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम्।
तस्याऽनुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः॥ २६॥

मनु ने कहा है— जिस प्रकार के पशु की हत्या की गयी हो, उसके बदले में पशुपालक को उसी प्रकार तथा प्रमाण का पशु देना चाहिये, अथवा उसके अनुरूप मूल्य दे॥ २६॥

अन्यत्राङ्कन-लक्ष्मभ्यां वाहने मोचने तथा।
सायं सङ्गोपनार्थं च न दुष्येद् रोध-बन्धयोः॥ २७॥

वृषोत्सर्ग के समय शस्त्र द्वारा अंकन करने, उस अंकन के लिये गोबर का चिह्न बनाने, बोझ लादने, उतारने तथा सायंकाल पशु की रक्षा के लिये रोध अथवा बन्धन करने पर मर जाने वाली गाय का कोई प्रायश्चित्त नहीं होता॥ २७॥

अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा।
नदी-पर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्॥ २८॥

साँड़ को अधिक दागने, लादने, जोतने, नाक छेदने, नदी या पहाड़ों पर चराने के समय यदि गाय या साँड़ की मृत्यु हो जाय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ २८॥

अतिदाहे चरेत् पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत्।
नासिक्ये पादहीनं तु चरेत् सर्वं निपातने॥ २९॥

अतिदाह के कारण होने वाली मृत्यु में चतुर्थांश, अधिक भार लादने के कारण होने वाली मृत्यु में आधा, नाथने के कारण होने वाली मृत्यु में तीन-चौथाई और वध में पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ २९॥

दहनात्तु विपद्येत अनड्वान् योक्त्रयन्त्रितः।
उक्तं पराशरेणैव ह्येकं पादं यथाविधि॥ ३०॥

जुए में जुता हुआ बैल यदि घर में आग लगने के कारण मर जाय तो महर्षि पराशर ने उसका चौथाई प्रायश्चित्त करने को कहा है॥ ३०॥

रोधनं बन्धनं चैव भारप्रहरणं तथा।
दुर्गप्रेरण-योक्त्रं च निमित्तानि वधेषु[1] षट्॥ ३१॥

घेर कर रोकना, बाँधना, भार लादना, आघात करना, कठिन स्थानों पर चराने के लिये ले जाना, जुए में जोतना— ये छः कर्म वध (मृत्यु) में कारण होते हैं॥ ३१॥

बन्ध-पाश-सुगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः।
भवने तस्य पापी स्यात् प्रायश्चित्तार्धमर्हति॥ ३२॥

यदि किसी के घर में बँधी हुई गाय या साँड़ मर जाय तो गृहपति उसके पाप का भागी होता है। इस स्थिति में उसे आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ३२॥

न नारिकेलैर्न च शाणबालै-
र्न चाऽपि मौञ्जैर्न च वल्कशृङ्खलैः।
एतैस्तु गावो न निबन्धनीया
[2]बद्ध्वाऽपि तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा॥ ३३॥

नारियल, सन, बाल, मूँज, पेड़ के छाल की रस्सी तथा लोहे की जंजीर से कभी किसी गाय या बैल को न बाँधे। यदि बाँधना ही हो तो उसे काटने के लिये शस्त्र (परशु) लेकर खड़ा रहे॥ ३३॥

कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् गोपशुं दक्षिणामुखम्।
पाशलग्नाग्निदग्धासु[3] प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ३४॥

कुश या कास की रस्सी से गाय तथा बैल को दक्षिण की ओर मुख करके बाँधे। ऐसी स्थिति में यदि वह जल मरे या फन्दा लगकर मर जाय तो दोष नहीं लगता॥ ३४॥

यदि तत्र भवेत् काष्ठं प्रायश्चित्तं कथं भवेत्?।
जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्विषात्॥ ३५॥

यदि वह पशु काष्ठ (खूँटा) पर बँधा हो तो तब प्रायश्चित्त करना पड़ेगा वह कैसे होगा? इस स्थिति में गायत्री का जप करने से पाप से मुक्ति हो जाती है॥ ३५॥

प्रेरयन् कूप-वापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन्।
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम्॥ ३६॥

जब गोपालक कुआँ या बावड़ी की ओर गाय को ले जाय अथवा जहाँ पेड़ काट कर गिराये जा रहे हों वहाँ ले जाय अथवा कसाइयों को बेच दे, तो उसे भी गोवध का प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ३६॥

आराधितस्तु यः कश्चिद् [4]भिन्नकक्षो यदा भवेत्।
श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नो वा कूपसङ्कटे॥ ३७॥
कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीव-पादयोः।
स एव म्रियते तत्र त्रीन् पादाँस्तु समाचरेत्॥ ३८॥

---

१. 'वधस्य' इति। २. 'बद्धवा तु' इति।
३. 'दग्धेषु' इति। ४. 'भिन्नकक्षो' 'कक्षा स्पर्धापदे,' इति धरणिः।

खिला-पिला कर स्वस्थ बनाकर जब वह किसी से होड़ लगाने योग्य हो जाय तब उसमें यदि उसका कान, हृदय आदि कोई अंग टूट-फूट जाय या कुआँ आदि में गिर जाय और कुआँ से निकालते समय उसकी गर्दन या पैर टूट जाँय और वह मर जाय तो उसमें तीन चौथाई प्राजापत्यव्रत करे॥ ३७-३८॥

कूपखाते तटाबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च।
पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ३९॥

यदि कोई गाय-बैल कुएँ के गड्ढे, बाँध, पुल, पौसरा तथा पानी के पोखरे आदि में मर जाय तो इसका प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता॥ ३९॥

कूपखाते तटाखाते दीर्घीखाते तथैव च।
स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ४०॥

कूपखात, तटाखात, दीर्घखात और छोटे-छोटे जो धर्मखात हैं—उनमें गिरकर मर जाने से प्रायश्चित्त नहीं होता है॥ ४०॥

वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति।
स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्॥ ४१॥

घर के द्वार पर गौओं के निवासस्थल (रहने की जगह) में जो कोई अपने कार्य के लिये गर्त करे और गृहनिर्माण के लिये जो गर्त हो इनमें मर जाये तो प्रायश्चित्त होता है॥ ४१॥

निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्प-व्याघ्रहतेषु च।
अग्नि-विद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ४२॥

रात में बाँधने वा निरोध करने से, सर्प अथवा व्याघ्र के द्वारा, अग्नि लगने या बिजली गिरने से जो मरे उसमें प्रायश्चित्त नहीं॥ ४२॥

ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभङ्गान्निपातने।
अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ४३॥

ग्राम को घेरकर शत्रु लोग मारते हों और उनके बाण से गौ भी मर जाये तथा घर गिरने से मरे अथवा मूसलाधार वृष्टि होने से मरे तो उसमें प्रायश्चित्त नहीं॥ ४३॥

सङ्ग्रामे प्रहतानां च ये दग्धा वेश्मकेषु च।
दावाग्नि-ग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ४४॥

संग्राम में, घर के बीच जलकर, जङ्गल में आग लगने से और जब गाँव का गाँव घात हो रहा है इन स्थलों में गाय मरे तो प्रायश्चित्त नहीं है॥ ४४॥

यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने।
यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ४५॥

औषध के लिये जो गाय बाँधी गई हो तथा पेट में जो गर्भ मर जाय उसके निकालने में यदि गाय मरे तो दोष नहीं॥ ४५॥

व्यापन्नानां बहूनां च बन्धने रोधनेऽपि वा।
भिषङ्मिथ्योपचारे च प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्॥ ४६॥

बाँधने या रोकने में यदि बहुत सी गाय मर जायें और वैद्य के उलटे-पुलटे औषध देने से मरे तो वहाँ पर प्रायश्चित्त होता है॥ ४६॥

गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः।
अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत्॥ ४७॥

यदि गाय या बैल कहीं कूप आदि में गिरकर या किसी प्रकार मर जाए और उनके बचाने में यत्न न करें, चुपचाप जो लोग देखा करें तो इन सब को प्रायश्चित्त होता है॥ ४७॥

एको हतो यैर्बहुभिः समेतै-
र्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिघातात्।
दिव्येन तेषामुपलभ्य हन्ता
निवर्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः॥ ४८॥

जहाँ कई मनुष्यों ने मिलकर एक को मारा हो और यह न जान पड़े कि किसकी चोट से गौ मरी तो दिव्य (शपथ) आदि से उनके बीच मारनेवाले का निश्चय करके राजनियुक्त मनुष्य उसे अलग कर सबको दिखला दे॥४८॥

एका चेद्बहुभिः काचिद्दैवाद्व्यापादिता भवेत्।
पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक्॥ ४९॥

यदि एक गाय को कई मनुष्यों ने मारा हो तो वे सब पृथक्-पृथक् एक-एक चौथाई प्रायश्चित्त करें॥ ४९॥

हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत्।
लाला भवति दष्टेषु एवमन्वेषणं भवेत्॥ ५०॥

किस कारण से गाय की मृत्यु हुई, इसके जानने का उपाय इस प्रकार है— यदि रुधिर देख पड़े तो मारा हुआ जानना; कृश (दुबला) होकर मरी हो तो व्याधि से मरा जाने; लाला (मुँह से लार बही) हो तो साँप के काटने से मरा जाने॥ ५०॥

ग्रासार्थं चोदितो वाऽपि अध्वानं नैव गच्छति।
मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता॥ ५१॥

और खाने के लिये प्रेरणा करने से भी न चले तो भी उसे पीड़ित जानना ऐसा मनुजी ने, जो सर्व शास्त्र ज्ञाता हैं, इसकी मृत्यु के हेतु जानने का उपाय कहा है॥ ५१॥

प्रायश्चित्तं तु तेनोक्तं गोघ्नश्चान्द्रायणं चरेत्।
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत्॥ ५२॥

उन्होंने प्रायश्चित्त भी यों कहा है कि गोघ्न से चान्द्रायण कराये और यदि केशों का मुण्डन न कराये तो दूना व्रत करे॥ ५२॥

द्विगुणे व्रत आदिष्टे द्विगुणा दक्षिणा भवेत्।
राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः॥ ५३॥
अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्।
यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षतः॥ ५४॥
तत्पापं तस्य तिष्ठेत वक्ता च नरकं व्रजत्।
यत्किञ्चित् क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति॥ ५५॥

दूने व्रत में दक्षिणा भी दूनी होती है। राजा, राजा का पुत्र अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण कोई भी यदि हत्यारों को केश-मुण्डन कराये बिना दूना प्रायश्चित्त न कराये तो वह पाप उसका रहता है और बतलाने वाला नरक में पड़ता है, जो कुछ पाप करे वह सब केशों में रहता है॥ ५३-५५॥

सर्वान् केशान् समुद्धृत्य च्छेदयेदङ्गुलद्वयम्।
एवं नारी-कुमारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम्॥ ५६॥

स्त्री (विवाहिता) और कुमारी (अविवाहिता) का मुण्डन यों होता है कि सारा केश पकड़ कर ऊपर-ऊपर का दो-दो अङ्गुल बाल काट लेवे॥ ५६॥

न स्त्रियाः केशवपनं न दूरे [१]शयनाऽसनम्।
न च गोष्ठे वसेद्रात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत्॥ ५७॥

स्त्रियों को सारे केश का मुण्डन, दूर होकर सोना, बैठना, गोशाला में रात का रहना और दिन में गौओं के पीछे-पीछे जाना—ये काम नहीं करने होते हैं॥ ५७॥

नदीषु सङ्गमे चैव अरण्येषु विशेषतः।
न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत्॥ ५८॥

नदियों के सङ्गम और विशेष करके जङ्गल में स्त्रियों को नहीं रहने देना चाहिये तथा उन्हें मृगचर्म भी नहीं पहिनाना चाहिए। इस भाँति उनसे व्रत कराना चाहिये॥ ५८॥

त्रिसन्ध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा।
बन्धुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्र—चान्द्रायणादिकम्॥ ५९॥

त्रिकाल स्नान, देवताओं का पूजन और अपने बन्धुओं के मध्य रहना—इस भाँति स्त्रियों का कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रत होता है॥ ५९॥

गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नयममाचरेत्।
इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति॥ ६०॥
स याति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम्।
विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते॥ ६१॥
क्लीबो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मनि वै नरः।
तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत्॥ ६२॥

घर में ही सदा पवित्र रहकर स्त्रियाँ नियम का आचरण करें। जो

१. 'शयनाऽशनम्' इति पाठान्तरम्।

कोई गोहत्या करके इस संसार में छिपाना चाहता है वह घोर कालसूत्र नामक नरक में निःसन्देह जा पड़ता है। उस नरक से छूट कर जब पुनः मर्त्यलोक में आता है तो वह सात जन्म तक क्लीब (नपुंसक), दुःखी और कोढ़ी होता है। इस हेतु पाप को प्रकट करके सदा अपने धर्म का पालन करे॥ ६०-६२॥

स्त्री बाल-भृत्य-गो-विप्रेष्वतिकोपं विवर्जयेत्।

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे गोरक्षणार्थे गोविपत्ति-
प्रायश्चित्तं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

स्त्री, बालक, भृत्य (नौकर), गौ और ब्राह्मण— इन पर अति क्रोध न करे॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में गोरक्षण के लिये गोविपत्तिप्रायश्चित्त
नामक नवम अध्याय समाप्त॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु हितां वक्ष्यामि निष्कृतिम्।
अगम्यागमने चैव शुद्धौ[1] चान्द्रायणं चरेत्॥ १॥

चारों वर्ण के लोगों के लिये बड़ी हितकारी शुद्धि अब मैं कहूँगा। (अपनी स्त्री के बिना) अन्य अगम्य के गमन में चान्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है॥ १॥

एकैकं ह्रासयेद्ग्रासं कृष्णे, शुक्ले च वर्द्धयेत्।
अमावस्यां न भुञ्जीत ह्येष चान्द्रायणो विधिः॥ २॥

कृष्णपक्ष में एक-एक ग्रास घटाते जाना, और शुक्लपक्ष में एक-एक ग्रास बढ़ाते जाना और अमावस्या को कुछ भी भोजन न करे—यही चान्द्रायण विधि है॥ २॥

कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत्।
अन्यथाजातदोषेण[2] न धर्मो न च शुध्यति॥ ३॥

कुक्कुट (मुर्गी) के अण्डे के बराबर ग्रास बनाना चाहिए। यदि घट-बढ़ करे तो दोष होने से धर्म और शुद्धि दोनों नहीं होती है॥ ३॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
गोद्वयं वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्॥ ४॥

प्रायश्चित्त कर चुकने के बाद ब्राह्मण भोजन कराये और दो गाय तथा दो वस्त्र ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे॥ ४॥

चण्डालीं वा श्वपाकीं वा ह्यभिगच्छति यो द्विजः।
त्रिरात्रमुपवासित्वा विप्राणामनुशासनात्॥ ५॥
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत्।
ब्रह्मकूर्च ततः कृत्वा कुर्याद् ब्राह्मणतर्पणम्॥ ६॥

जो द्विज चाण्डाली अथवा श्वपाकी में गमन करता है वह तीन दिन-

---

१. 'शुद्ध्यै' इति पाठान्तरम्।

२. 'भावदोषेण' इति पाठान्तरम्।

रात उपवास करके ब्राह्मणों की आज्ञा से शिखा समेत मुण्डन कराकर दो प्राजापत्य व्रत करे। अनन्तर ब्रह्मकूर्च व्रत करके ब्राह्मणभोजन करावे ॥ ५-६ ॥

गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद् गोमिथुनद्वयम्।
विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥

गायत्री का नित्य ही जप करे और दो बैल तथा दो गाय ब्राह्मण को दे तथा दक्षिणा भी दे तो निश्चय करके शुद्ध होता है ॥ ७ ॥

गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत्।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा चण्डालीं गच्छतोऽपि वा ॥ ८ ॥
प्राजापत्यद्वयं कुर्यात् दद्याद्गोमिथुनद्वयम्[1]।
श्वपाकीं वाऽथ चण्डालीं शूद्रो वा यदि गच्छति ॥ ९ ॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत्।
मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥ १० ॥
एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि सञ्चरेत्।
चान्द्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुध्यति ॥ ११ ॥

दक्षिणा में दो गाय दे ऐसी शुद्धि पराशर ने कही है। यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य चाण्डाली में गमन करे तो दो प्राजापत्य करके दो गाय, दो बैल दान दे। यदि कोई शूद्र श्वपाकी अथवा चाण्डाली में गमन करे तो प्राजापत्य कृच्छ्र करके चार गाय, चार बैल दान दे। यदि कोई माता, बहन और निज पुत्री में गमन करे तो मोह से इनमें गमन करके तीन कृच्छ्रव्रत करे और तीन चान्द्रायण भो करे। तदनन्तर लिङ्ग काट डाले तब शुद्ध होता है ॥ ८-११ ॥

मातृष्वसृगमे चैवमात्ममेढ्रनिकर्तनम्।
अज्ञानेन[2] तु यो गच्छेत्कुर्याच्चान्द्रायणत्रयम्[3] ॥ १२ ॥

मौसी में भी गमन करे तो अपना लिङ्ग काट डाले। जो कोई इनमें अज्ञान से गमन करे वह तीन चान्द्रायण करे ॥ १२ ॥

---

१. 'गोमिथुनं तथा' इति पाठान्तरम्। २. 'अज्ञानात्तां' इति पाठान्तरम्।
३. 'चान्द्रायणद्वयम्' इति पाठान्तरम्।

दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत्।
पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तां च भ्रातृजाम्॥ १३॥
गुरुपत्नीं स्नुषां चैव भ्रातृभार्यां तथैव च।
मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत्॥ १४॥

दस गाय और दस बैल दान दे ऐसी पराशर ने शुद्धि कही है। पिता की स्त्रियों में (अर्थात् अपनी माता की सौतौं में) गमन करे अथवा माता की सखी में या भाई की कन्या में, गुरु की पत्नी में, पुत्र की वधू में, भाई की स्त्री में, मामी, और सगोत्रा स्त्री में गमन करे तो तीन प्राजापत्य व्रत करे॥ १३- १४॥

गोद्वयं दक्षिणां दत्वा शुध्यते नात्र संशयः।
पशु-वेश्यादिगमने महिष्युष्ट्री-कपीस्तथा॥ १५॥

और दो गाय की दक्षिणा दे तो शुद्ध होता है। पशु, वेश्या, भैंस, ऊँटिन, बानरी॥ १५॥

खरीं च सूकरीं गत्वा प्राजापत्यव्रतं चरेत्।
गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणं ददेत्॥ १६॥

गधी और सूकरी में गमन करे तो प्राजापत्य व्रत करे। गाय में गमन करे तो तीन दिन-रात उपवास करके एक गाय ब्राह्मण को दे॥ १६॥

महिष्युष्ट्री-खरीगामी त्वहोरात्रेण शुध्यति।
अमरे[1] समरे वाऽपि दुर्भिक्षे वा जनक्षये॥ १७॥

भैंस, ऊँटनी और गधी में यदि एक ही बार गमन करे तो एक दिन-रात उपवास करने से शुद्ध होता है। डाका, युद्ध, दुर्भिक्ष (अकाल), महामारी॥ १७॥

बन्दिग्राहे भयार्तौ वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत्।
चण्डालैः सह सम्पर्कं या नारी कुरुते ततः॥ १८॥

बन्दी बना कर ले जाने पर, राजा और चोर के भय से अपनी स्त्री की सदा रक्षा करे। जो स्त्री चाण्डालों का संग करती है तो उसको भी बचाये॥ १८॥

---

१. 'डामरे' इति पाठान्तरम्।

विप्रान्दश वरान्कृत्वा स्वकं दोषं प्रकाशयेत्।
आकण्ठसम्मिते कूपे गोमयोदककर्दमे॥ १९॥
तत्र स्थित्वा निराहारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत्।
सशिखं वपनं कृत्वा भुञ्जियाद्यावकौदनम्॥ २०॥

वह बड़े उत्कृष्ट दश ब्राह्मणों के सामने अपने दोष को कहे और गले पर्यन्त किसी कूप या गर्त्त में जल और गोबर की कीचड़ बनाकर उसमें दिन-रात बिना भोजन किये ही खड़ी रहे। अनन्तर निकल कर दूसरे दिन शिखासहित मुण्डन करावे और यव का भात खाये॥ २०॥

त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत्।
शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलम्॥ २१॥
सुवर्णं पञ्चगव्यं च क्वाथयित्वा पिबेज्जलम्।
एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत् पुष्पवती भवेत्॥ २२॥

तदनन्तर तीन दिन उपवास करके एक दिन-रात जल में खड़ी रहे। सातवें दिन शङ्खपुष्पी लता का फल, फूल, जड़ या पत्ते में से कोई एक और सोना तथा पञ्चगव्य इन सबको इकट्ठा जल में औटा उस जल को पीये। जब तक रजस्वला न हो एक समय व्रत करती रहे॥ २२॥

व्रतं चरति तद्यावत्तावत्संवसेत बहिः।
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्॥ २३॥

जबतक व्रत करे तबतक बाहर निवास करे। प्रायश्चित्त करके ब्राह्मणभोजन कराये॥ २३॥

गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत्।
चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रं चान्द्रायणं स्मृतम्॥ २४॥

तथा दो गाय दक्षिणा में दे तो शुद्ध होती है—ऐसा पराशर ने कहा है। यदि इच्छापूर्वक चारों वर्ण की स्त्रियाँ चाण्डाल का संग करे तो एक कृच्छ्र और एक चान्द्रायण व्रत करें॥ २४॥

यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत्।
बन्दिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्धा बलाद्भयात्॥ २५॥

कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं शुध्येत्पाराशरोऽब्रवीत्।
सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छन्ती पापकर्मभिः॥ २६॥

जैसी पृथ्वी तैसी ही स्त्री होती है; इससे उसको दूषण न देवे। जो स्त्री बलात्कार से बाँधकर, भयपूर्वक मार करके दासी बनायी जाकर भोगी गयी हो तो वह सान्तपन कृच्छ्र करके शुद्ध होती है—ऐसा पराशर ने कहा है। जिसे न चाहने वाली स्त्री को पापकर्मियों ने केवल एक ही बार भोग किया हो॥ २५-२६॥

प्राजापत्येन शुध्येत ऋतुप्रस्रवणेन च।
पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत्॥ २७॥

वह प्राजापत्य व्रत और ऋतुकाल में रज के निकलने से शुद्ध होती है। जिसकी भार्या सुरा पी ले तो उसके शरीर का आधा (भार्यारूप) पतित होता है॥ २७॥

पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते।
गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्॥ २८॥

जिसका आधा शरीर पतित हुआ हो उसकी शुद्धि नहीं। वह गायत्री जपता हुआ कृच्छ्र सान्तपन व्रत को करे॥ २८॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम्॥ २९॥

एक दिन गोमूत्र पीकर रहे, दूसरे दिन गोबर, तीसरे दिन गौ का दूध, चौथे दिन गौ का दही, पाँचवें दिन घी, छठे दिन कुशा का जल पीकर रहे और सातवें दिन उपवास व्रत करे—यही कृच्छ्र सान्तपन व्रत कहा है॥२९॥

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ।
तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम्॥ ३०॥

जो स्त्री अपने पति के मरने, त्यागने और विदेश जाने पर जार से गर्भवती हो तो उस पापिनी को दूसरे राज्य में छोड़ आना चाहिये॥ ३०॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा समन्विता।
सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्याऽऽगमनं पुनः॥ ३१॥

जो ब्राह्मणी किसी दूसरे पुरुष के साथ जाये तो वह नष्टा कहाती है, तथा उसका पुनः आगमन नहीं होता॥ ३१॥

कामान्मोहात्तु या गच्छेत्त्यक्त्वा बन्धून्सुतान्पतिम्।
साऽपि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः॥ ३२॥

जो अपने बन्धु, सुत और पति को छोड़कर काम अथवा मोह से चली जाये वह भी परलोक में नष्टा होती है और इस लोक में तो अधिक नष्टा होती है॥ २२॥

मद-मोहगता नारी क्रोधाद्दण्डादिताडिता।
अद्वितीया गता चैव पुनरागमनं भवेत्॥ ३३॥

कोई स्त्री मद मोह से चली जाये और क्रोध में आकर दण्ड आदि से ताड़ित होकर यदि अकेली जाये तो उसका पुनः आगमन होता है॥ ३३॥

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते।
दशाहं न त्यजेन्नारीं त्यजेन्नष्टश्रुतां तथा॥ ३४॥
भर्ता चैव चरेत्कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बान्धवाः।
तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च ह्यहोरात्रेण शुध्यति॥ ३५॥

यदि दस दिन बाहर ही बीत जाये तो प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। इसलिए दस दिन तक स्त्री का त्याग न करे। यदि वह नष्ट हो गयी होतो उसे त्याग दें। भर्ता भी एक कृच्छ्र व्रत करे और सम्बन्धी आधा कृच्छ्र व्रत करे। उनके घर भोजन करने और पानी पीने से दिन-रात उपवास करे तो शुद्ध होता है॥ ३४-३५॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा विवर्जिता।
गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः॥ ३६॥

ब्राह्मणी यदि अकेली चली जाये और सौ पुरुषों के पास जाकर लौट आये तो उसे गोत्री लोग छोड़ दें॥ ३६॥

पुंसो यदि गृहे गच्छेत्तदशुद्धं गृहं भवेत्।
पति-मातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम्॥ ३७॥

यदि वह अपने पुरुष के घर जाये तो वह घर अशुद्ध हो जाता है, ससुराल और मैके जाये तो वह जार का ही घर होता है॥ ३७॥

उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात्पञ्चगव्येन शोधयेत्।
त्यजेच्च मृण्मयं पात्रं वस्त्रं काष्ठं च शोधयेत्॥ ३८॥

उस घर की भूमि और मिट्टी को कुछ-कुछ छीलकर पीछे पञ्चगव्य से लीप दे। मिट्टी के बर्तनों को फेंक देवे और वस्त्र तथा काष्ठ को धो डाले॥३८॥

सम्भारांश्छोधयेत्सर्वान् गोवालैश्च फलोद्भवान्।
ताम्राणि पञ्चगव्येन कांस्यानि दश भस्मभिः॥ ३९॥

और भी जो घर की वस्तुएँ हैं उनको शुद्ध कर डाले, अर्थात् फल से बने हुए को गाय के बालों से, ताम्र को पञ्चगव्य से, और काँसे के बर्तनों को दस बार भस्म लगाने से शुद्ध करे॥ ३९॥

प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादितम्।
गोद्वयं दक्षिणां दद्यात्प्राजापत्यद्वयं चरेत्॥ ४०॥

यदि ब्राह्मण हो तो दूसरे ब्राह्मणों का कहा हुआ प्रायश्चित्त करे। दो गाय दक्षिणा दे और दो प्राजापत्य करे॥ ४०॥

इतरेषामहोरात्रं पञ्चगव्येन शोधनम्।
उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः स्नानसन्ध्याऽर्चनादिभिः॥ ४१॥

अन्य वर्ण वाले हों तो एक दिन रात उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होते हैं। उपवास, व्रत, पुण्य, स्नान, संध्या और पूजन आदि॥ ४१॥

जप-होम-दया-दानैः शुध्यन्ते ब्राह्मणादयः।
आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम्॥ ४२॥
न प्रदुष्यन्ति दर्भाश्च यज्ञेषु चमसा यथा।

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे प्रायश्चितविधानं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

जप, होम, दया और दान—इतनी बातों से ब्राह्मण आदि वर्ण शुद्ध होते हैं। आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी पर पड़ा हुआ शुद्ध जल॥ ४२॥

और कुशा—जैसे यज्ञों में चमस पात्र को दोष नहीं लगता—उसी भाँति वे सदा शुद्ध ही रहते हैं॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में प्रायश्चितविधान
नामक दसवाँ अध्याय समाप्त॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

अमेध्य-रेतो गोमांसं चाण्डालान्नमथापि वा।
यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत्॥ १॥

यदि कोई ब्राह्मण अमेध्य (मनुष्य की हड्डी, शव, विष्ठा, मूत्र, ऋतुरज, वसा, प्रस्वेद, नेत्रमल, श्लेष्मा, वायु, गोमांस अथवा चाण्डाल का अन्न इनमें से एक भी) वस्तु स्वेच्छापूर्वक खा ले तो चान्द्रायण करे; अनिच्छा से खावे तो कृच्छ्र व्रत करे॥ १॥

तथैव क्षत्रियो वैश्योऽप्यर्द्धं चान्द्रायणं चरेत्।
शूद्रोऽप्येवं यदा भुङ्क्ते प्राजापत्यं समाचरेत्॥ २॥

और यदि क्षत्रिय या वैश्य खा ले तो आधा चान्द्रायण करे। शूद्र भी खाये तो प्राजापत्य व्रत करे॥ २॥

पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिबेद् द्विजः।
एक-द्वि-त्रि-चतुर्गावो दद्याद्विप्राद्यनुक्रमात्॥ ३॥

व्रत करने पर शूद्र तो पञ्चगव्य पीये और तीनों वर्ण ब्रह्मकूर्च पीयें तथा क्रम से एक, दो, तीन और चार गाय चारों वर्णों को दक्षिणा भी देनी पड़ती है॥ ३॥

शूद्रान्नं सूतकान्नञ्च ह्यभोज्यस्यान्नमेव च।
शङ्कितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च॥ ४॥

शूद्रका अन्न, सूतक का अन्न, चन्द्र-सूर्यग्रहण में दिया अन्न, अभोज्य

मनुष्य का अन्न, शंकित (भोज्य है या अभोज्य है) अन्न, प्रतिषिद्ध अन्न (देवनिर्माल्य आदि) और खाने से बचा उच्छिष्ट (जूठा) अन्न॥ ४॥

यदि भुक्तं तु विप्रेण ह्यज्ञानादापदाऽपि वा।
ज्ञात्वा समाचरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम्॥ ५॥

चाहे अज्ञान से अथवा विपत्ति में यदि ब्राह्मण भोजन कर ले तो पीछे जान कर कृच्छ्रव्रत करे और ब्रह्मकूर्च पीये तो शुद्ध होता है॥ ५॥

बालैर्नकुल-मार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं यदा।
तिल-दर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुध्यते नात्र संशयः॥ ६॥

बालक (जो पाँच वर्ष से अधिक न हो), नेवला, बिल्ली—इन सबने यदि अन्न को जूठा किया हो तो तिल और कुशा के जल से उसका प्रोक्षण करे तो निस्सन्देह शुद्ध हो जाता है॥ ६॥

शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्त्वान्नं पञ्चगव्येन शुध्यति।
क्षत्रियो वाऽपि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुध्यति॥ ७॥

शूद्र ने भी अभोज्य अन्न का भोजन किया हो तो वह पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है। यदि क्षत्रिय या वैश्य ने खा लिया हो तो वे प्राजापत्य करने से शुद्ध होते हैं॥ ७॥

एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सह भोजने।
यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत्॥ ८॥

एक पंक्ति में बैठे हुए ब्राह्मणों में से यदि एक भी भोजन करना छोड़ दे तो औरों को भी छोड़ देना चाहिये (अर्थात् शेष अन्न उच्छिष्ट हो जाता है)॥ ८॥

मोहाद्भुञ्जीत यस्तत्र पङ्क्तावुच्छिष्टभोजने।
प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनं तथा॥ ९॥

यदि कोई ब्राह्मण मोह से उक्त पंक्ति में उच्छिष्ट अन्न का भोजन करे तो कृच्छ्र सान्तपन व्रत करे, यही प्रायश्चित्त है॥ ९॥

पीयूषं श्वेतलशुनं वृन्ताकफल-गृञ्जने।
पलाण्डुं वृक्षनिर्यासं देवस्वं कवकानि च॥ १०॥

पेयूष (नवीन पय), सफेद लहसुन, श्वेत वृन्ताक (भण्टा, बैंगन) गृञ्जन, पलाण्डु (प्याज), वृक्षों के निर्यास (गोंद), देवस्व (देवता को चढ़ी हुई वस्तु) और कवक (छत्राक, कुकुरमुत्ते)॥ १०॥

उष्ट्रीक्षीरमविक्षीरमज्ञानाद्भुञ्जते[१] द्विजः।
त्रिरात्रमुपवासेन पञ्चगव्येन शुध्यति॥ ११॥

ऊँटनी का दूध, और भेड़ी का दूध जो अज्ञान से ब्राह्मण खा-पी ले तो तीन दिन उपवास करके पञ्चगव्य पीये तब शुद्ध होता है॥ ११॥

मण्डूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च।
ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुध्यति॥ १२॥

मण्डूक (मेढ़क) और मूषिक (चूहे) का मांस जान कर खा ले तो दिन-रात यवक (यव का भात) खाने से शुद्ध होता है॥ १२॥

क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावन्तौ शुचिव्रतौ।
तद्गृहे तु द्विजैर्भोज्यं हव्य-कव्येषु नित्यशः॥ १३॥

जो क्षत्रिय और वैश्य पवित्र रहते और धर्म किया करते हैं उनके घर में ब्राह्मण को देव-पितृ कार्यों में सदा भोजन करना चाहिये॥ १३॥

घृतं तैलं तथा क्षीरं गुडं स्नेहेन पाचितम्।
गत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभोजनम्॥ १४॥

शूद्र के घर का घी, तेल, दूध, गुड़ और घी से पका हुआ जो हो इतनी ही वस्तुओं को भोजन केवल ब्राह्मण को करना चाहिये वह भी नदी के तट पर जाकर खाना, शूद्र के घर में न खाना॥ १४॥

मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम्।
तं शूद्रं वर्जयेद्विप्रः श्वपाकमिव दूरतः॥ १५॥

जो शूद्र मद्य और मांस में नित्य ही रत हो और नीच कर्म करते हों, उन को (शूद्र) ब्राह्मण दूर से ही श्वपाक की तरह दूर कर दें॥ १५॥

द्विजशुश्रूषणरतान्मद्य-मांसविवर्जितान्।
स्वकर्मणि रतान्नित्यं न तांश्छूद्रान् त्यजेद् द्विजः॥ १६॥

---

१. 'पिबते' इति पाठान्तरम्।

जो शूद्र द्विजों की शुश्रूषा में रत हो, मद्य-मांस को छोड़े हुए हो, नित्य ही अपने कर्म में रत रहे—उन शूद्रों को द्विज कभी न त्यागे॥ १६॥

अज्ञानाद् भुञ्जते विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा।
प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत्?॥ १७॥

यदि ब्राह्मण लोग बिना जाने जनक सूतक अथवा मृतक सूतक में भोजन कर ले तो उनका हर एक वर्णों के गृह में खाने से पृथक्-पृथक् प्रायश्चित्त यों कहना चाहिये॥ १७॥

गायत्र्यष्टसहस्त्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके।
वैश्ये पञ्चसहस्त्रेण त्रिसहस्त्रेण क्षत्रिये॥ १८॥

शूद्र के घर सूतक में भोजन करे तो आठ सहस्र गायत्री-जप से शुद्धि होती है, वैश्य के सूतक में पाँच सहस्र और क्षत्रिय के घर तीन सहस्र से शुद्धि होती है॥ १८॥

ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते द्वे सहस्त्रे तु दापयेत्।
अथवा वामदेव्येन साम्नैवैकेन शुध्यति॥ १९॥

और ब्राह्मण के घर सूतक में भोजन किया हो तो दो सहस्र गायत्री-जप अथवा वामदेव्य साम का एक ही पाठ करे तो भी शुद्ध होता है॥ १९॥

शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आहृतम्।
पक्वं विप्रगृहे भुक्तं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत्॥ २०॥

सूखा अन्न, गोरस और स्नेह (घी, तेल) शूद्र के घर से लाकर ब्राह्मण के घर में पकाया हो तो मनुजी नें उसे भोजन करने के योग्य कहा है॥ २०॥

आपत्कालेषु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि।
मनस्तापेन शुध्येत द्रुपदां वा जपेच्छतम्॥ २१॥

यदि आपत्काल में ब्राह्मण ने शूद्र के घर भोजन किया हो तो मन में सन्ताप करने से शुद्ध होता है अथवा सौ बार 'द्रुपदादिव मुमुचानः' मन्त्र का जप करे॥ २१॥

दास-नापित-गोपाल-कुलमित्राऽर्धसीरिणः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥ २२॥

दास, नापित, गोपाल, अपने कुल का मित्र और अर्द्धसीरी इतने शूद्रों का अन्न भोजन करना चाहिये तथा जिस शूद्र ने आत्मसमर्पण कर दिया हो उसका भी अन्न भोज्य है॥ २२॥

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
असंस्काराद्भवेद्दासः संस्कारादेव नापितः[1]॥ २३॥

शूद्र की कन्या में ब्राह्मण से उत्पन्न हुए का यदि संस्कार कर दे तो नापित हो जाता है, और संस्कार न हुआ हो तो वही 'दास' कहलाता है॥ २३॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः।
स गोपाल इति ख्यातो भोज्यो विप्रैर्न संशयः॥ २४॥

शूद्र की कन्या में क्षत्रिय से जो पुत्र उत्पन्न हो उसे 'गोपाल' कहते हैं। निस्सन्देह उसका अन्न ब्राह्मणों को खाना चाहिये॥ २४॥

वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
सो ह्यार्द्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः॥ २५॥

ब्राह्मण से वैश्य की कन्या में जो उत्पन्न हो और उसका संस्कार भी हो तो वही 'आर्द्धिक' (अर्द्धसीरी) है। निस्सन्देह उसका अन्न ब्राह्मणों को भोज्य है॥ २५॥

भाण्डस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः।
अकामतस्तु यो भुङ्क्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत्?॥ २६॥

यदि अभोज्यों के बर्तन में रक्खे हुए जल, दधि, घी और दूध को जो बिना जाने खा ले तो उसका प्रायत्ति कैसे हो?॥ २६॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा उपसर्पति।
ब्रह्मकूर्चोपवासेन योज्या वर्णस्य निष्कृतिः॥ २७॥

चारों वर्णों में से चाहे कोई हो तो उसकी शुद्धि, ब्रह्मकूर्च को पीकर और एक उपवास करने से हो जाती है॥ २७॥

---

१. वेंकटेश्वरमुद्रितपाठोऽयम्।
'संस्कृतस्तु भवेद्दासो ह्यसंस्कारैस्तु नापितः' इति कालिकातामुद्रितपाठः।
'संस्कारात्त भवेद्दासः असंस्कारात्तु नापितः' इति एजुकेशनसोसायटीमुद्रितपाठः।

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति।
ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत्॥ २८॥

शूद्रों को उपवास नहीं करना होता। शूद्र दान देने से शुद्ध होता है। ब्रह्मकूर्च पीकर दिन-रात रहे तो श्वपाक भी शुद्ध हो जाता है॥ २८॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यं तु पवित्रं पापशोधनम्॥ २९॥

गौमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशों का जल इनको मिलकर पञ्चगव्य होता है, जो परम पवित्र और पापों का शोधक होता है॥ २९॥

गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्।
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि॥ ३०॥
कपिलायाः घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा।
मूत्रमेकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धं तु गोमयम्॥ ३१॥
क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दधि त्रिपलमुच्यते।
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम्॥ ३२॥

काली गाय का मूत्र, श्वेत गाय का गोबर, ताम्रवर्णा गाय का दूध, और लाल गाय का दही कपिला गाय का घी, अथवा ये सब वस्तु कपिला ही की लेना। मूत्र का एक पल (४ तोला) लेना, अर्धअंगुष्ठ तुल्य गोबर लेना, दूध सात पल (२८ तोले), दही तीन पल (१२ तोले), घी एक पल (४ तोले) तथा कुशोदक भी एक पल लेना॥ ३२॥

गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं [१]गन्धद्वारेति गोमयम्।
[२]आप्यायस्वेति च क्षीरं [३]दधिक्राव्णस्तथा दधि॥ ३३॥

गायत्री पढ़कर गोमूत्र लेना, 'गन्धद्वार' मन्त्र पढ़कर गोबर लेना, 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से दूध, 'दधिक्राव्ण' इस मन्त्र से दही॥ ३३॥

[४]तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं [५]देवस्य त्वा कुशोदकम्।
पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ॥ ३४॥

---

१. 'गन्धद्वारां'— (ऋ. सं. परि. ४.४.२. ७-८)　२. 'आप्यायस्व'— (ऋ सं. १.६.२२.१)
३. 'दधिक्राव्णो'—(ऋ सं. ३.७.१३.६)　४. 'तेजोऽसि शुक्रं'— (मा. सं.)
५. 'देवस्य त्वा'— (मा. सं.)

'तेजोसि शुक्रम्' इस मन्त्र से घी लेना, 'देवस्य त्वा' इस मन्त्र से कुशोदक लेना, उक्त ऋचाओं से पवित्र किये हुए पञ्चगव्य को अग्नि के समीप रखना॥ ३४॥

[1]आपोहिष्ठेति चालोड्य [2]मानस्तोकेति मन्थयेत्।
सप्त वारास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः॥ ३५॥

'आपो हिष्ठा' इस मन्त्र से उसे हिलाना, और 'मानस्तोक' इस मन्त्र से मथन करना। अनन्तर सप्तवार अर्थात् सात अपराधों को निवारण करने वाले ऐसे कुशों से कि जिनका अग्रभाग कटा न हो और हरे (तोते के समान रंगवाले) हों॥ ३५॥

एतैरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि।
[3]'इरावती' [4]'इदंविष्णुर्मानस्तोकेति[5] [6]'शं' वती॥ ३६॥

इन कुशाओं से पञ्चगव्य उठाकर विधिपूर्वक होम करना। होम करने की ऋचाएँ 'इरावती०', 'इदं विष्णु०', 'मानस्तोके०' और 'शन्नो देवी०' ये हैं॥ ३६॥

एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद्द्विजः।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्मन्थ्य प्रणवेन तु॥ ३७॥

इन्हीं से होम करना, होम से जो बचा रहे उसे द्विजलोग यों पीयें कि प्रणव पाठकर उसको आलोडन करे, उसी प्रणव से ही मथे॥ ३७॥

उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु।
यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्॥ ३८॥

और प्रणव से ही निकाल कर प्रणव ही से पीये। जो कुछ हड्डी और चमड़े में मनुष्यों का पाप रहता है॥ ३८॥

ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं प्रदीप्ताग्निरिवेन्धनम्।
पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम्॥ ३९॥

---

१. 'आपो हिष्ठा'— (ऋ सं. ७.६.५.१) २. 'मानस्तोके'— (ऋ सं. १.८.६.३)
३. 'इरावती'— (ऋ सं. ४.४.७.२; ५.६.२४.३; शुक्लय० सं० ५.१५.१६)
४. 'इदं विष्णुः'— ऋ सं. १.२.७.२ शु. य. सं. ५.१५.१५)
५. 'मानस्तोके'— (ऋ सं. १.८.६.३) ६. 'शन्नो.' (ऋ सं. ७.६.५.४)

उसे यह ब्रह्मकूर्च सम्पूर्ण रूप से भस्म कर देता है जैसे जलती हुई आग ईंधन को जला देती है। यह तीनों लोक में पवित्र है और देवताओं से अधिष्ठित है (अर्थात् इसमें देवता रहते हैं)॥ ३९॥

वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः।
दध्नि वायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः॥ ४०॥

गोमूत्र में वरुण, गोबर में अग्नि, दही में वायु, दूध में चन्द्रमा और घी में सूर्य रहते हैं॥ ४०॥

पिबतः पतितं तोयं भोजने मुखनिःसृतम्।
अपेयं तद्विजानीयात् पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ ४१॥

पानी पीते समय जो पानी गिर पड़े और भोजन करते समय जो अन्न मुँह से निकल पड़े तो वह पानी नहीं पीना चाहिये और न वह अन्न खाना चाहिये। यदि खाये तो चान्द्रायण व्रत करे॥ ४१॥

कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्व-शृगालौ च मर्कटम्।
अस्थि-चर्मादि पतितं पीत्वाऽमेध्या अपो द्विजः॥ ४२॥

यदि कूप में कुत्ता, गीदड़ और वानर की हड्डी अथवा चर्म पड़ा हुआ देखे और उस अपवित्र जल को द्विज पी ले तो आगे जो प्रायश्चित्त कहेंगे सो करे॥ ४२॥

नारं तु कुणपं काकं विड्वराह-खरोष्ट्रकम्।
गावयं सौप्रतीकं च मायूरं खड्गकं तथा॥ ४३॥

तथा मनुष्य, कौवे, गाँव के सूकर, गधे या ऊँट, गवय, (शवर), सुप्रतीक (चित्रमय), मयूर और गैंडे॥ ४३॥

वैय्याघ्रमार्क्षं सैंहं वा कूपे यदि निमज्जति।
तडागस्याऽथ दुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि॥ ४४॥

व्याघ्र, रीछ और सिंह का शव यदि कूप अथवा तड़ाग में डूब गया हो और उसका दुष्ट जल यदि कोई पीवे॥ ४४॥

प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः।
विप्रः शुध्येत् त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात्॥ ४५॥

तो क्रम से सब ऐसा प्रायश्चित्त पुरुष को होता है कि ब्राह्मण तीन दिन और क्षत्रिय दो दिन के उपवास से शुद्ध होता है॥ ४५॥

एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुध्यति।
परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च॥ ४६॥

वैश्य एक दिन के उपवास से और शूद्र नक्त (रात) में भोजन करने से शुद्ध होता है। परपाकनिवृत्त और परपाकरत—॥ ४६॥

अपचस्य च भुक्त्वाऽन्नं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्।
अपचस्य च यद्दानं दातुश्चास्य कुतः फलम्?॥ ४७॥

तथा अपच का अन्न यदि द्विज खा लेवे तो चान्द्रायण करे। जो कोई अपच को देता है तो उस दाता को फल कहाँ है?॥ ४७॥

दाता प्रतिग्रहीता च तौ द्वौ निरयगामिनौ।
गृहीत्वाऽग्निं समारोप्य पञ्चयज्ञान्न निर्वपेत्॥ ४८॥

दाता और प्रतिग्रहीता वे दोनों ही नरक में जाते हैं। जो अग्नि समारोपण करके पञ्चयज्ञों को नहीं करता॥ ४८॥

परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः।
पञ्चयज्ञान् स्वयं कृत्वा परान्नेनोपजीवति॥ ४९॥

मुनियों ने उसे 'परपाक-निवृत्त' कहा है। जो पञ्चयज्ञों को स्वयं करके दूसरे के अन्न से जीता है॥ ४९॥

सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः।
गृहस्थधर्मा यो विप्रो ददाति परिवर्जितः॥ ५०॥

सदा प्रातःकाल उठकर वह 'परपाक-रत' कहलाता है। जो ब्राह्मण गृहस्थधर्मी होकर देता नहीं॥ ५०॥

ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः।
युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः॥ ५१॥

उसे धर्मतत्त्व को जाननेवाले ऋषियों ने 'अपच' कहा है। दूसरे युग-युग के जो धर्म हैं और उन युगों में जो द्विज हैं॥ ५१॥

तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः।
हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः॥ ५२॥

उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वे द्विज युगरूप ही हैं। यदि ब्राह्मण को 'हुंकार' कर और बड़े को 'त्वङ्कार' (तू) कहे॥ ५२॥

स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत्।
ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे बध्वापि वाससा॥ ५३॥

तो जितना वह दिन शेष हो उतनी देर तक स्नान करके बैठा रहे और उनको प्रणाम करके प्रसन्न करावे। तिनके से भी मारे अथवा गले में वस्त्र से भी बाँधे॥ ५३॥

विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्।
अवगूर्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने॥ ५४॥
अतिकृच्छ्रं च रुधिरे कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते।
नवाहमतिकृच्छ्री स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः॥ ५५॥

अथवा विवाद में भी जीत ले तो प्रणाम करके प्रसन्न करे। ब्राह्मण को मारने के लिये दण्ड आदि उठावे तो एक दिन-रात, उठाकर धरती पर पटके तो तीन दिन और मारने से रुधिर निकल आवे तो अतिकृच्छ्र, चमड़े के भीतर ही रुधिर जम जावे तो कृच्छ्र व्रत करे। नव दिन तक एक पसर (मुट्ठी वा प्रसृति) भर अन्न भोजन करके रहे॥ ५४-५५॥

त्रिरात्रमुपवासी स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते।
सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते॥ ५६॥

अनन्तर तीन दिन उपवास करे तो कृच्छ्रव्रत होता है। सब पापों का जब संकर (मेल) हो जाये तो॥ ५६॥

दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्रीशोधनं परम्॥ ५७॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे पापानां प्रायश्चितविधानं
नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

दस सहस्र गायत्री का जप करने से परम शोधन होता है॥ ५७॥

पाराशरीय धर्मशास्त्र में पापों का प्रायश्चित विधान
नामक एकादश अध्याय समाप्त॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

दुःस्वप्नं यदि पश्येद्वा वान्ते वा क्षुरकर्म्मणि।
मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते॥ १॥

यदि दुःस्वप्न देखे, वमन करे, क्षौर करावे, मैथुन करे, प्रेत-धूम लगे तो स्नान मात्र विहित है॥ १॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं [१]सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥ २॥

अज्ञान से यदि विष्ठा या मूत्र खा पी लें और सुरा (मद्य) से मिला हुआ पदार्थ खा लें तो तीनों (द्विज) वर्ण पुनः संस्कार के योग्य हो जाते हैं॥

अजिनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्या व्रतानि च।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि॥ ३॥

जब द्विजों का पुनः संस्कार होता है तो अजिन (मृगचर्म), मेखला, और दण्ड (पलाशादि का), भैक्ष्यचर्या और व्रत—ये नहीं करने पड़ते॥ ३॥

विण्मूत्रभोजी शुध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत्।
पञ्चगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत्॥ ४॥

और विष्ठा-मूत्र के शुद्ध होने के लिये प्राजापत्य व्रत करे। पञ्चगव्य भी करे स्नान के बाद उसे पीकर शुद्ध होते हैं॥ ४॥

जलाऽग्निपतने चैव प्रव्रज्याऽनाशकेषु च।
वृत्यावसितवर्णानां कथं शुद्धिर्विधीयते?॥ ५॥

जो मनुष्य जल में डूबकर, वा अग्नि में जलकर, किंवा संन्यासी होकर, अथवा पहाड़ से गिरकर, अनशन व्रत करके मन से मरना चाहे और इस अपनी सङ्कल्प वृत्ति से बच जाये (अर्थात् उपायों से मरने को साध न सके) तो उन चारों वर्णों के लोगों की शुद्धि कैसे हो?॥ ५॥

---

१. 'सुरां वा पिबते यदि'—इति पाठान्तरम्।

प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेन च।
वृषैकादशदानेन वर्णाः शुध्यन्ति ते त्रयः॥ ६॥

तीनों वर्ण तो यों शुद्ध होते हैं कि दो प्राजापत्य करके किसी तीर्थ में जाकर स्नान करें और दस गाय और एक बैल दान देवें॥ ६॥

ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथे।
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत्॥ ७॥

और ब्राह्मण की शुद्धि यों होगी—वन में जाकर चौराहे के मध्य बैठकर शिखासमेत मुण्डन कराकर, दो प्राजापत्य व्रत करे॥ ७॥

गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं [1]पाराशरोऽब्रवीत्।
मुच्यते तेन पापेन ब्राह्मणत्वं न गच्छति॥ ८॥

दो गौ दक्षिणा दे तो शुद्ध होता है ऐसा पराशर ने कहा है। उस पाप से मुक्त होकर पुनः ब्राह्मणत्व को पाता है॥ ८॥

स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः।
आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च॥ ९॥

पाँच प्रकार के स्नान पण्डितों ने पवित्र कहे हैं अर्थात् आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य, और दिव्य॥ ९॥

आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम्।
'आपो हिष्ठे' ति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम्॥ १०॥

सारे अंग में भस्म मलने से 'आग्नेय' स्नान, जल में नहाने से 'वारुण', 'आपो हिष्ठा' इस मन्त्र से मार्जन करने से 'ब्राह्म', गाय की रज से 'वायव्य' स्नान होता है॥ १०॥

यत्तु सातपवर्षेण तत्स्नानं दिव्यमुच्यते।
तत्र स्नात्वा तु गङ्गायां स्नातो भवति मानवः॥ ११॥

जब धूप निकली हो और वर्षा भी होती हो तो उसमें नहाने से 'दिव्य' स्नान होता है। उसमें नहाकर मनुष्य गंगा स्नान करने वाला होता है॥ ११॥

---

१. 'स्वायम्भुवोऽब्रवीत्' इति पाठान्तरम्।

[1]स्नातुं यान्तं द्विजं सर्वे देवाः पितृगणैः सह।
वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्त्ताः सलिलार्थिनः॥ १२॥

जब द्विज स्नान करने के लिए चलते हैं तो उनके पीछे-पीछे सारे देवता पितरों सहित, वायु होकर (हवा बनकर) प्यास से व्याकुल होकर जल के लिए जाते हैं॥ १२॥

निराशास्ते निवर्त्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते।
तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम्॥ १३॥

जब धोती निचोड़ ले तो वे निराश हो फिर (वापस)जाते हैं। इस हेतु जब तक पितृतर्पण न कर लेवे तब तक धोती न धोवे न निचोड़े॥ १३॥

रोमकूपेष्ववस्थाप्य यस्तिलैस्तर्पयेत्पितृन्।
तर्पितास्तेन ते सर्वे रुधिरेण मलेन च॥ १४॥

जो मनुष्य अपने रोम के गर्तों पर तिल रखकर पितरों का तर्पण करता है वह मानों उन पितरों का रुधिर और मल से तर्पण करता है॥१४॥

अवधूनोति यः केशान् स्नात्वा [2]प्रस्त्रवतो द्विजः।
आचामेद्वा जलस्थोऽपि स बाह्यः पितृ-दैवतैः॥ १५॥

जो द्विज स्नान करके अपने केशों को फटकारता है, गीले कपड़ों को निचोड़ता अथवा सूखा वस्त्र पहन कर जल में खड़ा हो आचमन करता है वह देव-पितृ कार्य से बाह्य होता (नहीं कर सकता) है॥ १५॥

शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकक्षशिखोऽपि वा।
विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्॥ १६॥

शिर अथवा गले में वस्त्र लपेट, कच्छ (धोती के टोंके) अथवा शिखा को खोल, यज्ञोपवीत के बिना आचमन कर लेने पर भी वह अशुद्ध ही रहता है॥१६॥

जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्च बहिःस्थले।
उभे स्पृष्ट्वा समाचामेदुभयत्र शुचिर्भवेत्॥ १७॥

१. 'स्नानार्थं विप्रमायान्तं देव्यः०' इति कलिकातामुद्रितपाठः।
२. 'यस्तूत्सृजेन्मलम्' इति पाठान्तरम्।

बाहर खड़ा होकर जल में और जल में खड़ा होकर बाहर आचमन न करे। यदि एक पाँव जल में और एक बाहर रक्खे हो तो चाहे जिस प्रकार आचमन करे शुद्ध होता है॥ १७॥

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे।
आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च॥ १८॥

स्नान, जलपान, क्षुधा, शयन में खा कर और गली में चल कर और वस्त्र पहिन कर भी दो बार आचमन करे॥ १८॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथाऽनृते।
पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्॥ १९॥

इसी भाँति छींकने, थूकने, दाँत में जूठा रहने, झूठ बोलने और पतितों के साथ बोलने पर दहिना कान छू ले॥ १९॥

भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते।
अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्॥ २०॥

दिन में स्नान करना प्रशस्त है; क्योंकि सूर्य की किरणों से वह पवित्र किया होता है। ग्रहण के बिना रात में नहाना प्रशस्त नहीं है॥ २०॥

मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चाथ देवताः।
सर्वे सोमे प्रलीयन्ते तस्माद्दानं तु सङ्ग्रहे॥ २१॥

मरुत, वसु, रुद्र, आदित्य और सब देवता चन्द्रमा में लीन हो जाते हैं इस हेतु ग्रहण में दान करना चाहिये॥ २१॥

खलयज्ञे विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणे तथा।
शर्वर्यां दानमस्त्येव नान्यत्रैवं विधीयते॥ २२॥

खलयज्ञ (खलिहान) विवाह, संक्रान्ति और ग्रहण में रात का दान छोड़ कर और कभी रात्रि का दान न करे॥ २२॥

पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि।
राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि॥ २३॥

पुत्र जन्म, यज्ञ, मरण और राहु के दर्शन (ग्रहण) में रात के समय दान प्रशस्त होता है, इससे अन्य समय में नहीं॥ २३॥

महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम्।
प्रदोष-पश्चिमौ यामौ दिनवत्स्नानमाचरेत्॥ २४॥

जो मध्य के दो प्रहर हैं उसमें महानिशा होती है और सन्ध्या के प्रहर तथा पिछले प्रहर की रात में दिन के तुल्य स्नान करना चाहिये॥ २४॥

चैत्यवृक्षश्चितिर्यूपश्चाण्डालः सोमविक्रयी।
एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत्॥ २५॥

चैत्यवृक्ष (अर्थात् श्मशान के वृक्ष) और चिति अर्थात् कोई प्रसिद्ध मृत्तिकादिसमूह वा श्मशानयूप, चाण्डाल, और सोमलता बेंचनेवाला— यदि इनमें से किसी को ब्राह्मण छू ले तो वस्त्रसहित जल में स्नान करे॥ २५॥

अस्थिसञ्चयनात्पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत्।
अन्तर्दशाहे विप्रस्य ह्यूर्ध्वमाचमनं स्मृतम्॥ २६॥

यदि अस्थिसञ्चय (अर्थात् मरने के अनन्तर चार दिन) के पूर्व यदि ब्राह्मण रोये तो स्नान करके शुद्ध होता है। उसके बाद दस दिन के भीतर रोये तो आचमनमात्र करके पवित्र होता है॥ २६॥

सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
सोमग्रस्ते तथैवोक्तं स्नान-दानादिकर्मसु॥ २७॥

सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण में जो कोई जल स्नान-दानादिक में मिले वही गङ्गाजल के समान फल देता है॥ २७॥

कुशैः पूतं भवेत् स्नानं कुशेनोपस्पृशेद् द्विजः।
कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानसमं भवेत्॥ २८॥

कुश से स्नान पवित्र होता है। कुश के साथ ही ब्राह्मण आचमन करे। जो जल कुश के साथ उठाया जाता है वह सोमपान के तुल्य होता है॥ २८॥

अग्निकार्यात् परिभ्रष्टाः सन्ध्योपासनवर्जिताः।
वेदं चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः॥ २९॥

अग्निहोत्र से परिभ्रष्ट, सन्ध्या-वन्दन छोड़े हुए और वेद न पढ़ने वाले ब्राह्मण वृषल (शूद्र) के तुल्य होते हैं॥ २९॥

तस्माद् वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः।
अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते॥ ३०॥

इस हेतु अर्थात् वृषल होने के भय से ब्राह्मण को चाहिये कि सब न पढ़ सके तो वेद का एक भाग ही पढ़ ले॥ ३०॥

शूद्रान्नरसपुष्टस्याऽप्यधीयानस्य नित्यशः।
जपतो जुह्वतो वाऽपि गतिरूर्ध्वा न विद्यते॥ ३१॥

जो कोई शूद्र के अन्न और रस से पुष्ट है वह चाहे नित्य वेदाध्ययन, जप और होम किया करे, परन्तु उसकी उत्तम गति नहीं होती॥ ३१॥

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम्।
शूद्राज्ज्ञानागमश्चैव ज्वलन्तमपि पातयेत्॥ ३२॥

शूद्र का अन्न, शूद्र का संसर्ग, शूद्र के साथ बैठना, और शूद्र का ज्ञान सीखना, इन से अग्नि के समान तेजवाला ब्राह्मण भी पतित हो जाता है॥

यः शूद्र्या पाचयेन्नित्यं शूद्री च गृहमेधिनी।
वर्जितः पितृ-देवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः॥ ३३॥

जिस द्विज का पाक शूद्री बनाती है और जिसकी गृहिणी शूद्री है तथा पितृ और देवकार्य में जो वर्जित है वह रौरव नरक में जाता है॥ ३३॥

मृत-सूतकपुष्टाङ्गो द्विजः शूद्रान्नभोजनः।
अहं तन्न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति॥ ३४॥

मरण सूतक के अशौच वाले का अन्न खाने वाला तथा शूद्रका अन्न भोजन करने वाला द्विज, यह हम नहीं जानते कि किस-किस योनि में जायेगा॥ ३४॥

गृध्रो द्वादश जन्मानि दश जन्मानि शूकरः।
श्वयोनौ सप्त जन्मानि हीत्येवं मनुरब्रवीत्॥ ३५॥

मनु ने यों कहा है कि वह बारह जन्म गृध्र (गिद्ध), दस जन्म सूकर (सूअर) और सात जन्म कुत्ते की योनि में पड़ता है॥ ३५॥

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः।
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत्॥ ३६॥

यदि दक्षिणा के लोभ से ब्राह्मण शूद्र की हवि (खीर आदि) होम करता है तो वह ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और वह शूद्र ब्राह्मण बन जाता है॥ ३६ ॥

मौनव्रतं समाश्रित्य ह्यासीनो न वदेद्द्विजः।
भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत्॥ ३७॥

जिसने मौन होकर भोजन करने का संकल्प किया हो और भोजन करते समय ही यदि बोल दिया हो तो जितना अन्न बच रहा हो उसे न खाये, छोड़ दे॥ ३७ ॥

अर्द्धे भुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत्।
हतं दैवं च पित्र्यं च ह्यात्मानं चैव घातयेत्॥ ३८॥

जो ब्राह्मण आधा तिहाई भोजन करते ही उसी भोजनपात्र में जल पी ले तो देवकार्य या पितृकार्य तथा निज आत्मा को भी वह हत (नष्ट) करता है॥ ३८॥

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं विमुञ्चति।
स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते॥ ३९॥

ब्राह्मणों के भोजन करते समय जो पहिले पात्र (भोजन करना) छोड़ देता है वह मूर्ख, पापिष्ठ, और ब्रह्मघ्न कहलाता है॥ ३९॥

भोजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः।
न देवास्तृप्तिमायान्ति निराशाः पितरस्तथा॥ ४०॥

भोजन पात्र उठने वा चलित होने नहीं पाये, इसके बीच में ब्राह्मण लोग यदि स्वस्ति बोल दें तो देवता तृप्त नहीं होते और पितर लोग निराश हो जाते हैं॥ ४० ॥

अस्नात्वा नैव भुञ्जीत ह्यजप्त्वाऽग्निमहूय च।
पर्णपृष्ठे न भुञ्जीत रात्रौ दीपं विना तथा॥ ४१॥

बिना स्नान, जप और अग्निहोत्र के किए भोजन न करे तथा पत्ते की पीठ पर भी भोजन न करे। रात के समय दीपक बिना भोजन न करे॥ ४१॥

गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचिन्तयेत्।
पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्ती सुबुद्धिमान्॥ ४२॥

जो गृहस्थ दयायुक्त होकर धर्म की ही चिन्ता करे और अपने पोष्यवर्ग (स्त्री-पुत्र-भृत्य आदि) की अर्थ-सिद्धि के लिये न्यायवर्ती (न्याय या नीतिपूर्वक चलता) हो तो वही बुद्धिमान् कहाता है॥ ४२॥

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम्।
अन्यायेन तु यो जीवेत्सर्वकर्मबहिष्कृतः॥ ४३॥

न्याय से जो धन उपार्जन करे उसी से अपने आपकी रक्षा करे और जो अन्याय से कमाई करे वह सब कर्मों से बहिष्कृत होता है॥ ४३॥

अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः।
दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत्तु नित्यशः॥ ४४॥

अग्निहोत्री अथवा इष्ट का चयनकारी, कपिला गौ, यज्ञ करनेवाला, राजा, सन्यासी और समुद्र—ये देखने से ही पवित्र करते हैं; इसलिये इन्हें नित्य देखे॥ ४४॥

अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम्।
तिलान् कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत्॥ ४५॥

अरणि (जिन्हें मथकर यज्ञ में आग निकालते हैं), काली बिल्ली, चन्दन, अच्छी मणि, घी, तिल, काले मृग का चर्म और बकरा इतनी वस्तु घर में रखनी चाहिये॥ ४५॥

गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम्।
तत्क्षेत्रं दशगुणितं 'गोचर्म' परिकीर्तितम्॥ ४६॥

जितनी दूर में सौ गौ और एक बैल खुले हुए खड़े हों उससे दसगुने स्थल को 'गोचर्म' कहते हैं॥ ४६॥

ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाक्कायकर्मजैः।
एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्विषैः॥ ४७॥

यदि इस गोचर्म का दान मनुष्य करे तो ब्रह्महत्यादिक जो मानसिक, वाचिक और कायिक पाप हैं उनसे छूट जाता है॥ ४७॥

कुटुम्बिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः।
यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम्॥ ४८॥

कुटुम्बवाले, दरिद्र और विशेषतः वेदपाठी ब्राह्मण को जो दान दे वह दान शुभ फल देनेवाला होता है॥ ४८॥

वापी-कूप-तडागाद्यैर्वाजपेयशतैर्मखैः।
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति॥ ४९॥

जो मनुष्य किसी की भूमि हर लेवे वह चाहे सैकड़ों वापी, कूप, तड़ाग आदि बनावे अथवा वाजपेय आदि सैकड़ों यज्ञ करे या कोटि गौ दान करे तो भी शुद्ध नहीं होता॥ ४९॥

अष्टादशदिनादर्वाक् स्नानमेव रजस्वला।
अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरब्रवीत्॥ ५०॥

यदि अठारह दिन के भीतर ही स्त्री रजस्वला हो तो मात्र स्नान करले इससे अधिक दिनों पर तीन दिन अशुचि होती है, ऐसा उशना मुनि ने कहा है॥ ५०॥

युगं युगद्वयं चैव त्रियुगं च चतुर्युगम्।
चाण्डाल-सूतिकोदक्या-पतितानामधःक्रमात्[1]॥ ५१॥

पतित, रजस्वला, प्रसूति स्त्री और चाण्डाल— इन सबसे क्रमशः चार, आठ, बारह तथा सोलह हाथ के अन्तराल से रहना॥ ५१॥

ततः सन्निधिमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत्।
स्नात्वाऽवलोकयेत्सूर्यमज्ञानात्स्पृशते यदि॥ ५२॥

यदि इतने से अधिक समीप वे आ जाँय तो वस्त्रसहित स्नान कर डाले। यदि अज्ञान से इन्हें छू लेवे तो स्नान करके सूर्य का अवलोकन करे। ज्ञान से स्पर्श करने में ८००० गायत्रीजप भी करना होता है॥ ५२॥

विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम्॥ ५३॥

हाथ होते हुए यदि कोई अल्पज्ञानी ब्राह्मण नदी में मुँह लगाकर पानी पीवे तो वह अवश्य कुत्ते की योनि में पड़ता है॥ ५३॥

---

१. अधःक्रमात्=विपरीतक्रमात्।

यस्तु क्रुद्धः पुमान् ब्रूयाज्जायायास्तु ह्यगम्यताम्।
पुनरिच्छति चेदेनां विप्रमध्ये तु श्रावयेत्॥ ५४॥

यदि कोई ब्राह्मण क्रुद्ध होकर अपनी स्त्री को अगम्य (अर्थात् माता वा भगिनी सा) बोल दे और पुनः उसका संग करना चाहे तो ब्राह्मणों को परिषत् के मध्य जाकर सुनावे॥ ५४॥

श्रान्तः क्रुद्धस्तमोऽन्धो वा क्षुत्पिपासा-भयार्दितः।
दानं पुण्यमकृत्वा तु प्रायश्चित्तं दिनत्रयम्॥ ५५॥

मैं थका हुआ, क्रोध, तमोन्ध (अज्ञान) अथवा क्षुधा और प्यास से किंवा भय से पीड़ित होकर ऐसा कह बैठा, अथवा मैं 'दान और तीर्थ आदि पुण्य करता हूँ' कहकर न करे तो भी ब्राह्मणों को यही पूर्वोक्त कारण सुनावे और उनके कहने से तीन दिन का उपवास करे॥ ५५॥

उपस्पृशेत्त्रिषवणं महानद्युपसङ्गमे।
चीर्णान्ते चैव गां दद्याद् ब्राह्मणान्भोजयेद्दश॥ ५६॥

और समुद्रगामिनी नदी के संगम में त्रिकाल स्नान करे; अनन्तर एक गोदान दे और दस ब्राह्मणों को भोजन कराये॥ ५६॥

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च।
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम्॥ ५७॥

जो ब्राह्मण दुराचारी हो और जो निषिद्धाचरण करता हो उसका अन्न यदि कोई द्विज भोजन करे तो एक दिन उपवास करे॥ ५७॥

सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदान्तवेदिनः।
भुक्त्वान्नं मुच्यते पापादहोरात्रान्तरान्तरः॥ ५८॥

यदि उपवास न कर सके तो किसी सदाचारी ब्राह्मण तथा वेदाङ्गवेत्ता अथवा वेदान्तवादी ब्राह्मण का अन्न दूसरे-दूसरे दिन खाये तो उस पाप से मुक्त हो जाता है॥ ५८॥

ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरिक्षमृतौ तथा।
कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत ह्यशौचमरणे तथा॥ ५९॥

यदि कोई ऊर्ध्वोच्छिष्ट (वमनादि से जूठे मुँह), अधोच्छिष्ट (मूत्र

पुरीष) से अशुद्ध होकर अथवा खट्वा वा अटारी आदि अन्तरिक्ष में मर जावे तो उसके निमित्त तीन कृच्छ्र कराने से (अथवा व्रत के बदले उतनी गौ का दान देने से) शुद्ध होता है। यही प्रायश्चित्त अशौच में मरे हुए का भी है॥ ५९॥

कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम्।
पुण्यतीर्थेऽनार्द्रशिरः स्नानं द्वादशसङ्ख्यया॥ ६०॥

एक अयुत १०,००० देवी गायत्री जपने से भी कृच्छ्रव्रत का फल होता है; तथा दो सौ प्राणायाम करने से एक कृच्छ्र होता है, या किसी पुण्य तीर्थ में स्नान करे एवं जब सिर के बाल सूख जावें तब पुनः स्नान करे। इस प्रकार बारह बार स्नान करने से भी एक कृच्छ्र व्रत होता है॥ ६०॥

द्वियोजने तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकं प्रकल्पितम्।
गृहस्थः कामतः कुर्याद्रेतसः स्खलनं भुवि॥ ६१॥
सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह।

या दो योजन तीर्थकी की ओर चले तो भी एक कृच्छ्रव्रत होता है। यदि गृहस्थ अपनी इच्छा से वीर्य भूमि में गिरावे तो एक सहस्र गायत्री जपकर तीन प्राणायाम करे॥ ६१॥

चतुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्विप्रघातके॥ ६२॥
समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्।
सेतुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाचरेत्॥ ६३॥

ब्रह्मघाती हो उसको चारों वेद जानने वाला विप्र जो समुद्रसेतु (रामेश्वर) के दर्शन के लिये गमन करने का प्रायश्चित्त बतलावे। सेतुबन्ध जाते समय मार्ग में चारों वर्णों के घर भिक्षा माँगे ॥ ६२-६३॥

वर्जयित्वा विकर्मस्थान् छत्रोपानद्विर्जितः।
अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः॥ ६४॥

विरुद्ध कर्म करने वालों के घर भिक्षा न करे और छाता, जूता पास न रक्खे; तथा ऐसा कहकर भिक्षा माँगे कि 'मैं दुष्कृत कर्म करने वाला महापातकी हूँ॥ ६४॥

गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः।
गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु वा॥ ६५॥

मैं ब्रह्म घातक, घर के द्वार पर भिक्षा के अर्थ खड़ा हूँ।' गौओं के मध्य ग्राम और नगरों में वास करे॥ ६५॥

तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु वा।
एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम्॥ ६६॥

तपोवन, तीर्थ, नदी, झरने इन स्थलों में अपना पाप कहता हुआ पवित्र सागर में जाकर स्नान करें॥ ६६॥

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्।
रामचन्द्रसमादिष्टं नलसञ्चयसञ्चितम्॥ ६७॥

दस योजन चौड़ा, सौ योजन लम्बा, रामचन्द्र के कथन से नल ने इसका सञ्चय करके यहाँ उल्लेख किया है॥ ६७॥

सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम्॥ ६८॥

ऐसे समुद्रसेतु को देखकर ब्रह्महत्या से छूट जाता है। सेतुदर्शन से शुद्ध देह होकर समुद्र में स्नान करे॥ ६८॥

यजेत वाश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः।
पुनः प्रत्यागतो वेश्मवासार्थमुपसर्पति॥ ६९॥

यदि पृथ्वी का पति राजा हो तो अश्वमेध यज्ञ करने से ब्रह्महत्या से छूटता है। पुनः घर में आकर वास करे॥ ६९॥

सपुत्रः सह भृत्यैश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्।
गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणाम्॥ ७०॥

पुत्र और भार्या तथा भृत्यों समेत ब्राह्मणों को भोजन कराये और चारो वेद जानने वाले ब्राह्मणों को एक सौ गाय दक्षिणा दे॥ ७०॥

ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते।
विन्ध्यादुत्तरतो यस्य निवासः परिकीर्तितः॥ ७१॥

जिसका निवास विन्ध्य पर्वत के उत्तर भाग में हो ऐसे ब्राह्मणों की प्रसन्नता से ब्रह्मघाती शुद्ध होता है। ॥ ७१॥

पराशरमतं तस्य सेतुबन्धस्य दर्शनम्।
सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत्॥ ७२॥

उसी को पराशर के मत से सेतुबन्ध का दर्शन विहित है। सवन (सोम याग) करती हुई स्त्री की यदि हत्या करे तो ब्रह्महत्या के समान व्रत करे॥ ७२॥

मद्यपश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्॥ ७३॥

मद्यपी ब्राह्मण भी ब्रह्महत्या के समान चान्द्रायण व्रत करे और समुद्रगामिनी नदी में स्नान करके चान्द्रायण करे। तदनन्तर ब्राह्मण भोजन करावे॥ ७३॥

अनडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्।
सुरापानं सकृत्कृत्वा ह्यग्निवर्णां सुरां पिबेत्॥ ७४॥
स पावयेदथात्मानमिह लोके परत्र च।

एक बैल और गौ ब्राह्मण को दक्षिणा देवे। जो एक बार सुरा (मद्य) पीकर अग्नि समान तप्त करके सुरा पीकर मर जावे वह अपनी आत्मा को इस लोक और परलोक दोनों में शुद्ध करता है॥ ७४॥

अपहृत्य सुवर्णं तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम्॥ ७५॥
गच्छेन्मुसलमादाय राजाभ्याशं वधाय तु।
हतः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञाऽसौ मुक्त एव च॥ ७६॥

यदि ब्राह्मण सुवर्ण चोरी करे तो अपने ही आप हाथ में मूसल लेकर राजा के पास अपने वध के लिये जावे। राजा उसे मारे तो शुद्ध होता है और राजा उसे छोड़ दे तो भी शुद्ध हो जाता है॥ ७५-७६॥

कामतस्तु कृतं यत्स्यान्नान्यथा वधमर्हति।
आसनाच्छयनाद्यानात्सम्भाषात्सहभोजनात्॥ ७७॥

यदि जानबूझकर ब्राह्मण का सोना चुराया हो तब उसका वध करना; अन्यथा वध के योग्य नहीं होता है। एकत्र बैठने, सोने, एक ही सवारी पर चढ़कर चलने, बोलने और साथ भोजन करने से॥ ७७॥

सङ्क्रामन्ति हि पापानि तैलबिन्दुरिवाम्भसि।
चान्द्रायणं यावकं च तुलापुरुष एव च॥ ७८॥
गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम्।

एक का पाप दूसरे को उसी भाँति लग जाता है जैसे तैल का बिन्दु पानी में फैल जाता है। चान्द्रायण, यावक, तुलापुरुष और गौओं के पीछे-पीछे चलना; इनसे प्रत्येक प्रकार का पाप नष्ट होता है॥ ७८॥

एतत्पाराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपञ्चकम्॥ ७९॥
द्विनवत्या समायुक्तो धर्मशास्त्रस्य सङ्ग्रहः।
यथाऽध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा॥ ८०॥

यह पराशर का बनाया हुआ पाँच सौ बानबे श्लोक का धर्मशास्त्र संग्रह है। जैसे वेदाध्यन से पुण्य होता है उसी प्रकार इस धर्म-शास्त्र के पढ़ने से भी पुण्य है॥ ७९-८०॥

अध्येतव्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गकामिना।

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे सकलप्रायश्चित्तनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः॥ १२॥

इस हेतु जो स्वर्ग की कामना करे वह नियमपूर्वक इसे पढ़े।

श्री पाराशरीय धर्मशास्त्र में 'सकलप्रायश्चित्तनिर्णय' नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त॥ १२॥

इस प्रकार 'पाराशरस्मृतिः' में पं० श्रीगुरुप्रसादशास्त्री कृत हिन्दी टीका समाप्त हुई।

१. 'शास्त्राच्छंसनाच्चैव शास्त्रमित्यभिधीयते।'